# छायावादी काव्य में उदात्त तत्व

प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी
के काव्य के सन्दर्भ में
विशेष अध्ययन

# छायावादी काव्य में उदात्त तत्त्व

कमलेश

प्राध्यापिका
हिन्दी विभाग, माता सुन्दरी कॉलेज, नई दिल्ली
(दिल्ली विश्वविद्यालय)

पूज्य माता-पिता के
श्रीचरणों में
सादर—

पश्चिम की काव्य-चिन्तन परम्परा में प्लेटो और अरस्तू के बाद तीसरा महत्त्वपूर्ण नाम लौंजाइनस का है। लौंजाइनस की ख्याति पश्चिम के काव्यशास्त्रीय चिन्तन को नयी दिशा देने की दृष्टि से तो है ही, इसलिए और भी है कि वे अनेक शताब्दियों के बाद आने वाले रोमांटिक दौर के आद्याचार्य सिद्ध हुए। योरोप में उन्नीसवीं शताब्दी में जिस काव्य-चिन्तन का प्रभुत्व रहा उसके बीज प्राचीनों में से लौंजाइनस के काव्य-विवेचन में ही प्राप्त होते हैं। भाविक अभिव्यक्ति के विविध रूपों में चेतना-विधायक तत्त्व की दृष्टि से लौंजाइनस ने उदात्त की परिकल्पना और प्रतिष्ठा की। बाद में रोमांटिक कवियों ने सौन्दर्य के उदात्त रूप की साधना अपने काव्य के माध्यम से की। भारत में, विराट् और उदात्त की यह साधना बंगला के रवीन्द्रनाथ टाकुर और हिन्दी के छायावादी कवियों में काव्य का प्राण रही। अतः छायावाद की कविता में उदात्त-तत्त्व के अध्ययन का यह प्रयास महत्त्वपूर्ण कहा जायगा।

लौंजाइनस 'उदात्त' की व्याप्ति आत्मतत्त्व से लेकर काव्य-शैली तक स्वीकार करते थे। लेखिका ने इस अनेकस्तरीय अवधारणा को उसके इसी व्यापक रूप में ग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त भारतीय और पाश्चात्य परम्पराओं में इसके ऐतिहासिक विकास-क्रम का अध्ययन करते हुए इसे एक जीवन्त विचारधारा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'उदात्त' के इस तात्त्विक और ऐतिहासिक विवेचन के उपरान्त इसे एक शास्त्रीय प्रतिमान के रूप में छायावादी काव्य पर लागू कर उसका विश्लेषण किया गया है। छायावाद के सन्दर्भ में इस दृष्टि की सार्थकता और महत्त्व असंदिग्ध है। प्रस्तुत प्रबन्ध इस दृष्टि से छायावाद के आलोचनात्मक अध्ययन की एक विशेष दिशा निर्धारित करता है। मुझे विश्वास है, हिन्दी-जगत् लेखिका के इस प्रयास का स्वागत करेगा।

—निर्मला जैन

२६ दिसम्बर, ७४

# प्राक्कथन

प्रस्तुत लघु-शोध प्रबन्ध का विवेच्य विषय है "छायावादी काव्य में उदात्त तत्त्व"। छायावाद के प्रमुख कवियों—प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी—के काव्य के सन्दर्भ मे ही उदात्त तत्त्व का विश्लेषण किया गया है। छायावाद पर तो अब तक अनेक आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु "छायावादी काव्य में उदात्त तत्त्व" पर ऐसा कोई ग्रन्थ दृष्टिगत नहीं होता। लोंजायनस द्वारा निर्दिष्ट उदात्त तत्त्वों को आधार बनाकर छायावादी काव्य मे उन तत्त्वों को रेखांकित करने का प्रयास इस प्रबन्ध मे किया गया है। जगदीश पाण्डेय का "उदात्त सिद्धान्त और शिल्पन", शिवबालक राय का "काव्य मे सौन्दर्य और उदात्त तत्त्व" नामक पुस्तकें प्रकाश में आई हैं किन्तु इनमे लोंजायनस के सिद्धान्तो का विवेचन नही है। छायावाद की कुछ प्रमुख पुस्तकों—'छायावाद' (नामवरसिंह), 'छायावाद' (शम्भुनाथ सिंह) नामक पुस्तको मे छायावाद के विविध पक्षों का विवेचन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, किन्तु छायावादी काव्य मे उदात्त तत्त्व का स्वतन्त्र अथवा प्रासंगिक रूप से विवेचन इन कृतियों में भी नही हुआ। अतः प्रस्तुत प्रबन्ध की उपादेयता स्वतः सिद्ध है।

इस लघु-प्रबन्ध को चार अध्यायों में विभाजित किया गया है :

प्रथम अध्याय में उदात्त का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। उदात्त के स्वरूप के लिए विभिन्न पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों की अवधारणाओं को प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय में छायावादी कवियों की औदात्य विषयक अवधारणा को स्पष्ट किया गया है।

तृतीय अध्याय में छायावादी काव्य में महान् धारणाओं की क्षमता एवं प्रेरणा-प्रसूत भाव आवेग का स्पष्ट किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में छायावादी काव्य में उदात्त भाषा-शैली पर प्रकाश डाला गया है। अन्तिम अध्याय में छायावादी काव्य में उदात्त तत्त्व का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रबन्ध के प्रणयन में पूजनीया डॉ० श्रीमती निर्मला जैन ने अपने सहज वात्सल्य भाव से मेरे शोध-पथ को प्रशस्त किया है। उनके लिए मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। श्रद्धेय डॉ० नगेन्द्र के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने उपयुक्त विषय पर कार्य करने की अनुमति प्रदान की।

माननीय डॉ० स्नातक ने समय-समय पर मुझे जो प्रोत्साहन दिया, उसके लिए मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

श्रद्धेय श्री पुरुषोत्तमराम जिगन की आभारी हूँ जिन्होंने प्रत्येक अवसर पर प्रसन्नतापूर्वक यथासम्भव सहायता प्रदान की। अन्त में प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस के प्रति आभार प्रकट करती हूँ जिनके प्रयत्नों से इस पुस्तक को अपने पाठकों तक पहुँचाने में समर्थ हो सकी हूँ।

पुस्तक के लेखन और प्रकाशन के मध्य चार वर्ष का अंतराल आ गया है। प्रयास भी पहला ही है। अतः त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक है। सुधीजन मेरा ध्यान इस ओर आकृष्ट करेंगे तो आभारी हूँगी।

—कमलेश

# अनुक्रमणिका

॥ छायावादी काव्य में उदात्त तत्त्व ॥

॥ छायावादी काव्य में उदात्त तत्त्व ॥

प्रथम अध्याय

## उदात्त का स्वरूप

उदात्त अंग्रेजी शब्द (sublime) 'सब्लाइम' का हिन्दी रूपान्तरण है। पाश्चात्य साहित्य में सौन्दर्यशास्त्र के साथ इस शब्दावली पर भी दीर्घ-कालीन परम्परा से विचार होता आया है। इस तत्त्व का सर्वप्रथम विचारक लांजायनस है जिसने 'पेरिइप्सुस' ग्रन्थ काव्य के उदात्त-तत्त्व के लिए लिखा था। इसके अनुसार उदात्त तत्त्व शैली का महत्तम गुण है जो विभिन्न व्यंजनाओं के माध्यम से किसी व्यक्तित्व या घटना के रोमांसिक, आवेशपूर्ण एवं भयंकर तत्त्व को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त होता है। लांजायनस के अनुसार 'साहित्य का अस्तित्व शिक्षा देने के लिए अथवा ज्ञान देने के लिए नहीं है प्रत्युत वह तो हमारे संवेगों को जाग्रत करने, हमें हर्षातिरेक का अनुभव कराने और हमें आनन्द प्रदान करने के लिए है। वह महान् और गम्भीर विचारों की आवश्यकता को भली प्रकार स्वीकार करता है। मगर उसका विश्वास है कि उदात्त विचार गहन संवेगों का उद्रेक करते हैं औदात्य तक पहुँचा देते है ठीक उसी प्रकार जैसे इसके विपरीत एक गहन संवेग एक सूक्ष्म विचार को जन्म दे।'[1] सर्वप्रथम लांजायनस ने उदात्त विषयक विचारों को

१. Lieder, Paul Robert & Withington Robert—The Art of Literary Criticism, p. 72

"That literature exists, not to teach, or to give us learning, but to arouse our emotions, to transport us into ecstasy, to give us pleasure. He admits the necessity of great and weighty thought, but believes that noble ideas give rise to deep emotions, lifts us to sublimity, just as, conversely, a deep emotion may give rise to profound thought."

स्पष्ट किया है। "औदात्य महान् आत्मा की प्रतिध्वनि है।"[1] लांजायनस के अनुसार "भव्यता सही अवसर पर कौंध कर वज्रपात के समान अपने सामने पड़ने वाली हर वस्तु को छिन्न-भिन्न कर देती है।"[2] लाजायनस के प्रबन्ध मे सर्वोत्कृष्ट स्थल नीचे दिया जाता है। "प्रकृति ने हम मनुष्यों को इसलिए नियत किया है कि हम नीच अथवा निकृष्ट पशु सिद्ध न हों। जब वह हमे इस विशाल ब्रह्मांड मे प्रविष्ट कराती है जैसे किसी महान् सभा मे प्रविष्ट करा रही हो। मानो हम उस शक्तिशाली विश्व के दर्शक हों। उमी समय वह हमारी आत्माओं के भीतर उत्कृष्ट अथवा दिव्य के लिए अजेय प्रेम और श्रद्धा प्रतिष्ठापित कर देती है। यही कारण है कि सम्पूर्ण विश्व भी मानव मस्तिष्क के विचार और चिन्तन के लिए पर्याप्त नही लगता और प्राय· हमारी कल्पना दिगन्त को पार कर जाती है।"

यही कारण है कि स्वभाव से हम छोटी-छोटी धाराओ की प्रशसा नही करते, चाहे वे कितनी उपयोगी और निर्मल क्यो न हो, बल्कि नील नदी, डेन्यूब अथवा राइन और इन सबसे अधिक महासागर से प्रभावित होते हैं। इसी प्रकार हम अपने द्वारा प्रज्वलित छोटी-सी अग्निशिखा को स्वर्गिक ज्वालाओं की अपेक्षा अधिक सम्भ्रम से नही देखते, यद्यपि वे प्राय अन्धकार मे छिपी रहती हैं न हम उसे ऐतना के ज्वालामुखियो की अपेक्षा अधिक विस्मयकारी मानते हैं जो अपने विस्फोट मे अतल गर्भ से बडे-बडे पत्थर एवं वृहदाकार शिलाखण्ड बाहर फेंकते हैं और कभी-कभी जिनके गर्भ से विशुद्ध और अमिश्रित आन्तर्भौम ज्वाला का नद प्रवाह उमडता चला आता है। इन सब विषयो मे हम यह कह सकते हैं कि जो कुछ भी उपयोगी तथा आवश्यक है उसे मनुष्य साधारण मानता है अपने सम्भ्रम का भाव तो वह उन पदार्थों के लिए ही सुरक्षित रखता है जो विस्मय विमूढ कर देने वाले है।

समालोचको ने उन समस्त बाह्य पदार्थों का जो महान् और दिव्य हैं एक सिद्धान्त खडा कर दिया। यथा महान्, विषम, विस्मयकारक और भयप्रद। महानता विशेषकर भूदृश्य के पदार्थों की थी उदाहरणार्थ आॅल्पस पर्वत,

१. Wimsatt, William and Brooks Cleanth—Literary Criticism : A Short History, p. 99
"Sublimity is the echo of a great soul".
२. Wimsatt, William and Brooks Cleanth—Literary Criticism : A Short History, p 106
"Sublimity flashing forth at the right moment scatters everything before it like a thunderbolt."

जिसको सन् १६८८ में डेवस ने अवरोहण किया और उसके गद्गद करने वाले संत्रास और एक भयानक प्रसन्नता से प्रभावित हुआ। एडीसन ने इसके बाद वैसी ही यात्रा की और वैसा ही प्रभाव उस पर भी पड़ा, जिसका वर्णन उसने अपने एक पत्र 'स्पैक्टेटर' में किया। उसने लिखा "जिन-जिन पदार्थों को मैंने देखा है उनमें सागर अथवा महासागर से अधिक किसी और ने मेरे विचारों पर इतना प्रभाव नहीं डाला। मैं इस विशाल जलराशि की हिल्लोरों को यहाँ तक कि प्रशान्त वातावरण में भी बिना अत्यन्त प्रसन्न विस्मय के देख नहीं सकता। परन्तु जब समुद्र में तूफान आया हो तो उस समय चहुँ ओर सिवाय श्वेत फेन युक्त तरंगों और तैरते हुए पर्वतों के और कुछ दिखाई न दे तो "ऐसे मनोहर आतंक" के दृश्य जो हृदय में उठें, वर्णन करना असम्भव है।"[1]

"लांजायनस के लिए महान् साहित्य वह है जो केवल मात्र पाठक को एक बार ही नहीं बल्कि पुन:-पुन: जाग्रत और उत्तेजित करे। यदि बार-बार पढ़ने पर वह विभिन्न प्रकृति, व्यवसाय, इच्छा और आयु वाले तथा विभिन्न भाषाओं को जानने वाले मनुष्यों को प्रभावित करे, तो उसकी महानता प्रश्नातीत है।"[2] लांजायनस के अनुसार "महानता को बनाने में इतना किसी वस्तु का हाथ नहीं है जितना कि उचित स्थान पर वास्तविक भावनाओं का है क्योंकि यह शब्दों को विक्षिप्त उत्साह के उद्दाम ज्वार से अन्त:प्रेरित कर

१. Wimsatt, William and Brooks Cleanth—Literary Criticism : A Short History, p. 286

"..... of all Objects that I have ever seen, there is none which affects my Imagination so much as the Sea or Ocean. I cannot see the Heavings of this Prodigious Bulk of Waters, even in a Calm, without a very pleasing Astonishment. But when it is worked up in a Tempest, so that the Horizon on every side is nothing but foaming Billows and floating Mountains, it is impossible to describe the agreeable Horror that rises from such a prospect."

२. Daiches, David—Critical Approaches to Literature, p. 48
"For Longinus, great Literature is that which excites and arouses the reader not only once but repeatedly; if it produces this impression after repeated readings, and among men "of different pursuits, lives, ambitions, ages and languages," then its greatness is beyond question."

उन्हें अलौकिक उन्माद से भर देती है ।"[1]

लोंजाइनस ने एक स्थल पर लिखा है कि "औदात्त्य का वर्णन करने के लिए कलाकार की स्वयमेव महान् आत्मा होना आवश्यक है । यदि उसे उदात्त के सम्बन्ध में विवेचन करना हो, यदि वह आनन्द का प्रेमी हो, या धनलोलुप हो तो वह निम्न स्थिति का बन जाता है । एक भ्रष्ट न्यायाधीश के समान वह अपने स्वार्थ को ही श्रेय और भव्य मानने की भूल करता है नश्वर अंगों की प्रशंसा करता है और अन्ततः वह अपनी इच्छाओं के अधीन हो जाता है । एक निकृष्ट व्यक्ति, दास कोई प्रशंसनीय कार्य नहीं कर सकता । सच्चा वक्ता ऐसी संकुचित आत्मा नहीं रखता । परन्तु जिनके विचार पराधीनों के समान क्षुद्र होते हैं और जो लोग जीवन में निरन्तर अभ्यास करते हैं वे कोई ऐसी वस्तु नहीं बना सकते जो विस्मय और अमरत्व के योग्य हो । परन्तु महान् शब्द उन्हीं के मुख से निःसृत होते हैं जिनके विचार गम्भीर और गहन हों ।"[2]

उदात्त द्वारा हमारी आत्मा उल्लास और हर्षातिरेक से समुन्नत या ऊँची उठ जाती है । पाठक का लेखक के साथ तादात्म्य हो जाता है क्योंकि उसकी आत्मा अनुभव करती है मानों जो कुछ वह सुनता है उसका सृजन

१. Daiches, David—Critical Approaches to Literature, p 48
"I would confidently affirm that nothing makes so much for grandeur as true emotions in the right place, for it inspires the words, as it were, with a wild gust of mad enthusiasm and fills them with divine frenzy."

२. Crane, R. S.—Critics and Critisim, p. 258
"The artist must himself be sublime in soul if he is to reflect the sublime; if he is led by the love of pleasure or the love of money, he becomes little and ignoble. Like a corrupted judge he mistakes his own interest for what is good and noble, he admires his mortal parts and neglects to improve the immortal, and he becomes eventually the prisoner of his passions."
"The true Orator must have no low ungenerous spirit, for it is not possible that those who think small thoughts fit for slaves, and practise them in all their daily life, should put out anything to deserve wonder and immortality." But "great words issue, and it cannot be otherwise, from those whose thoughts are weighty."

स्वयं उसने किया है अतः जो बिल्कुल आत्मा को ऊपर नहीं उठाता उसे हम मिथ्या औदात्य भी नहीं कह सकते। जो कुछ थोड़े समय के लिए ही प्रभावित करे और उसके पश्चात् निरन्तर घटता जाए वह छद्म औदात्य है जबकि जिसमें स्थायी शक्ति विद्यमान हो और जो आत्मा का निरन्तर पोषण करे वह स्वयमेव 'उदात्त' है।

अतः 'उदात्त' वह तीव्र भावावेग है जिसका प्रतिरोध करना असम्भव है और जो स्मृतिपटल पर छा जाता है। जो सदैव अपने पीछे मौलिक या सद्य विचार के लिए सामग्री छोड़ जाता है क्योंकि उदात्त में यह गुण होते हैं। उसकी सबसे निश्चित कसौटी यह होगी कि वह सभी को अच्छा लगे।'[१]

साहित्य के प्रति लाजायनस का मत उस समय के अनुसार असाधारण है। यग जैसे व्यक्तियों की भाँति इंगलैंड के कल्पनाजीवी काल से कुछ अधिक मिलता-जुलता है। अपने प्रबन्ध में उसने उन्हीं गुणों का दृष्टान्त द्वारा निरूपण किया है। उसके अनुसार "समस्त कला में स्पष्टीकरण होना सहज और स्वाभाविक है जैसा कि बायलो उसके अनुवादक का कथन है। उदात्त के विषय में कहते हुए वह स्वयमेव उदात्त बन जाता है।"[२] इसी प्रकार पोप में

१. Crane, R. S.—Critics and Criticism, p. 243
"The soul is elevated by sublimity to joy and exultation; the reader feels an identification with the author, for the soul feels, "as though itself had produced what it hears"; hence what does not elevate at all would not even be false sublimity, and that which elevates only temporarily and has a diminishing force forever after is false sublimity, while that which has a permanent force and which provides a perpetual nourishment for the soul is the sublime itself. Hence it is that transport which is impossible to resist and which establishes itself firmly in the memory and which always leaves material for fresh reflection since the sublime would have these characteristics, the most certain attestation of sublimity would be the discovery of its universal appreciation; thus the consensus gentiun constitutes, for Longinus, an unquestionable test, since it abstracts from any possibility of individual error."

२. Lieder, Paul Robert and Withington Robert—The Art of Literary Criticism, p. 73
As Boileau, his translator, said: "In speaking of the

कई बार बायलो की अनुगूंज सुनाई पडती है—

तू, (निर्भीक) लाजायनस,
सभी नव कवियो को प्रेरित करे,
दे शुभाशीष उनके समालोचक को
कर मुखरित कवि-ज्वाल ।
तू उत्साहपूर्ण न्यायधीश
निज दायित्व मे रत रहे
सहृदयतावश दण्डादेश दे
जो सर्वदा ही न्यायपूर्ण हो ।
जिसका स्वयं प्रमाण
सबल बनाये उसका विधान
"और वह स्वय महान् 'उदात्त' है ।
करता जो उदात्त का बखान ।"[१]

sublime, he is himself sublime". So like wise Pope, who echoed Boileau

१. More than once—
"Thee, bold Longinus ! all the Nine inspire,
And bless their critic with a poet's fire;
An ardent Judge, who, Zealous in his trust,
With warmth gives sentence, yet is always just,
Whose own example strengthens all his laws,
And is himself that great sublime he draws."
Wimsatt, William and Brooks Cleanth—Literary Criticism and Short History, p. 285
The term, "sublime" in French Criticism, shortly before the work of Boileau, had been applied to diction and had meant something like preciosite or a metaphysical affection of nicety. And Boileau's main point in his classic preface was that the sublime so well described by Longinus resided not in nicety of terms but in grandeur of conception—a grandeur which had to be expressed, not preciously, but strongly, and which was capable of being expressed in only a few simple words. The example cited by Longinus from the opening of the "Hebrew Lawgiver's" Genesis lent itsel most impressively to Boileau's new conception.

'उदात्त' का विवेचन सर्वप्रथम लांजायनस ने ही किया था। इसके पश्चात् भी अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने 'उदात्त' के विषय में अपने-अपने विचार प्रकट किये हैं।

बॉयलो की रचना से कुछ समय ही पूर्व फ्रांसीसी मीमांसा में 'उदात्त' शब्द का प्रयोग वाक्य विन्यास अथवा लेखन शैली के लिए किया जाता था और इसका अर्थ कुछ मनोहारिता के आध्यात्मिक प्रदर्शन के अनुरूप था। बॉयलो के जिस प्रयास ने 'उदात्त को फ्रांसीसी और अंग्रेजी समालोचना मे अर्वाचीन शब्द के रूप में अधिष्ठित किया उसका सारांश यह था कि लांजायनस ने जिस 'उदात्त' का विशद वर्णन किया है वह शब्दों की मनोहारिता में न रहकर अवधारणा की महानता में होता है। ऐसी महानता जिसे अत्यधिक रूप से व्यक्त करने की अपेक्षा दृढ़तापूर्वक किया जाय, और जो कतिपय सरल शब्दों में ही अभिव्यक्त की जा सके।

लांजायनस द्वारा हिब्रू स्मृतिकार (के जेनिसिस) (इंजील के प्रथम अध्याय में) की प्रस्तावना से उद्धृत उदाहरण बॉयलो की नवीन अवधारणा के लिए बहुत काम की वस्तु है।

'उदात्त' शब्द से लांजायनस का आशय प्रवक्ताओं द्वारा कही गई 'उदात्त शैली' से नहीं था। वास्तव में उसका अभिप्राय प्रबन्ध में असाधारण तत्व से है जिससे कृति की प्रतिष्ठा बढ़े, मन आनन्द विभोर हो उठे अथवा मुग्ध हो। भव्य उदात्त शैली के लिए उच्च भाषा की आवश्यकता होती है। परन्तु उदात्त केवल एक विचार, एक अलंकार, एक उक्ति में भी सम्भव हो सकता है।[1]

१. By the "sublime" Longinus did not mean what orators call "the sublime style;" he meant the element of the *extra-ordinary* in discourse, the marvellous, the striking, *that in* virtue of which a work exalts, ravishes, transports, 'The sublime style needs lofty language; but the sublime may appear *in* a single thought, a figure, a phrase."

The sublime as a category distinct from the beautiful. (The beautiful *for* Johnson was something close to the rhetorically elegant. Milton was sublime, Pope *beautiful*) The sublime plays a pronounced, if somewhat disguised, *role* in Johnson's thought as an adjunct or ambiguous equivalent of the universal. The grandeur of generality is something inclusive, not only in the sense of being universally valid or true, but in that of being big, reaching out and taking in all,"

जानसन ने अपने विचारों में 'उदात्त' को सुन्दर से विभिन्न श्रेणी का होने की मान्यता दी। जानसन के मतानुसार 'सुन्दर' कुछ-कुछ आलंकारिक रूप से उदात्त के निकट था। मिल्टन अत्युदात्त था, पोप 'सुन्दर' अर्थात् मिल्टन की कविता उत्कृष्ट और भव्य थी जबकि पोप की सुन्दर और लावण्यमयी। सामान्यता की महानता का इसमें समावेश है। केवल मात्र इस अर्थ में नहीं कि वह व्यापक रूप से न्याय-संगत और सच्ची है प्रत्युत बड़ा होने में और हस्तगत करने और समझने में भी इसका उतना ही महत्त्व है।

"उदात्त उनकी पहुँच से बहुत दूर था क्योंकि उन्होंने कभी इस बात का प्रयास नहीं किया था कि अवधारणा और विस्तार जोकि एकाएक समस्त मन को भर देता है जिसका प्रथम प्रभाव आकस्मिक विस्मय है दूसरा यथोचित श्लाघा। औदात्य समीकरण से उत्पन्न होता है और तुच्छता विसर्जन द्वारा। महान् विचार सदैव सामान्य होते हैं।"[१]

"काट ने अत्युदात्त, भव्य और सुन्दर में अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि हम केवल प्राकृतिक पदार्थों में भव्यता पर विचार करते हैं क्योंकि कला की उत्कृष्टता सदैव प्रकृति के साथ सामजस्य रखने वाली अवस्थाओं तक ही सीमित होती है। प्राकृतिक सौन्दर्य (जो कि अपने पर ही निर्भर करता है) अपने रूप के साथ उद्देश्य पूर्णता लाता है जिससे वह पदार्थ ऐसा प्रतीत होता है मानो वह पहले ही हमारे निर्णय के अनुकूल हो। इस प्रकार अपने आप ही एक परितुष्टि की वस्तु सविहित की जाती है दूसरी ओर जो अकारण ही और जिनके केवल मात्र बोध से ही हमारे अन्दर उत्कृष्ट (उदात्त) भावना उद्भूत हो जाए। जो निर्णय के बारे में उद्देश्य का उल्लघन करती प्रतीत हो, जो हमारी प्रस्तुत्यात्मक क्षमता के सर्वथा अनुपयुक्त सिद्ध हो और हमारी कल्पना शक्ति की अवहेलना करे और इतना होने पर भी उसे अधिकतर 'उदात्त' या 'भव्य' कहा जाय।

प्रकृति में 'उदात्त' के निरूपण से ही मन स्वयमेव द्रवित हो जाता है।

१. Wimsatt, William and Brooks Cleanth—Literary Criticism . A Short History, pp. 323-324.
Thus in his remarks on the metaphysical poets; Nor was the sublime within their reach..., for they never attempted that comprehension and expanse of thought which at once fills the whole mind, and of which the first effect is sudden astonishment, and the second rational admiration. Sublimity is produced by aggregation and littleness by dispersion. Great thoughts are always general.

दूसरी ओर सुन्दर पदार्थ के सौन्दर्यबोध विषयक निर्णय के दखसु चिन्तन में इस मनोवृत्ति की तुलना एक स्पन्दन से की जा सकती है। अर्थात् एक ही पदार्थ की ओर बारी बारी से आकर्षण और प्राकर्षण का होना।

बड़े-बड़े ऊपर लटकते हुए और भयावने चट्टान उमड़-घुमड़ कर आए हुए आकाश में मेघ, कौंधती बिजली के साथ बढ़ते हुए बादलों की गड़गड़ाहट, विनाशकारी ज्वालामुखी पर्वत, झंझावात, अपने पीछे बरबादी छोड़ता हुआ, अगाध महासागर भयंकर शोरगुल की अवस्था में, एक विशालकाय नदी का उच्चजल प्रपात और इसी प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण यह सिद्ध करते है कि हमारी प्रतिरोध की शक्ति उनकी महान् शक्ति के समक्ष कितनी नगण्य और तुच्छ है किन्तु जितने भयानकतर ये दृष्टिगोचर हों उतने ही अधिकतर आकर्षक प्रतीत होते हैं यदि केवल हम सुरक्षित हों। हम सहसा इन पदार्थों को भव्य अथवा उत्कृष्ट कहेंगे क्योंकि यह हमारी आत्मिक शक्तियों को उनकी 'परिचित ऊँचाई से ऊपर उठाते हैं और हमारे अन्दर एक बिलकुल विभिन्न प्रकार की ऐसी प्रतिरोध शक्ति जाग्रत करते हैं जिसके द्वारा साहस पाकर हम 'प्रकृति की प्रत्यक्ष सर्वशक्तिमत्ता का दृढ़ता से सामना करते हैं।"[१]

इसके अतिरिक्त रैनेल्ड के लेखों में ब्लेक द्वारा दी गयी निम्नलिखित कटु समालोचना के कतिपय वाक्य दिये जाते है।

"वास्तविक प्रभाव बिखरे भागो के एकीकरण में है इसके अतिरिक्त और कुछ नही। भागो के परित्याग करने से सम्पूर्ण वस्तु का क्या बनेगा। सूक्ष्म विवेचन आकस्मिक नहीं होता। समस्त उदात्तता सूक्ष्म विवेचन पर प्रस्थापित है पृथक् सामान्य रूप का अस्तित्व नही हो सकता। भिन्नता विशिष्ट होती है सामान्य नही। सामान्यीकरण करना महामूर्खता है।"[२]

वर्ड्सवर्थ और कालरिज 'उदात्त' या उसके अंगों—भावोत्तेजक और अस्पष्ट महान् को वास्तव में गुणो के सम्मिश्रण के केन्द्र के बहुत निकट रखने

१. Wimsatt, William and Brooks Cleanth—Literary Criticism : A Short History, p. 111.

२. Wimsatt, William and Brooks Cleanth—Literary Criticism : A Short History, p. 322
"Real effect is making of our parts, and it is nothing else but that." Sacrifice the parts; what becomes of the whole" ? "Minute Discrimination is not accidental. All sublimity is founded on minute Discrimination." "Distinct general form cannot exist. Distinctness is particular, not general." "To generalize is to be an 'Idiot'."

है जिसके द्वारा कल्पना और कविता की परिभाषा की जाती है।

"उत्साहपूर्ण और विचारमग्नता के महान् मग्रहात्म्य धर्म ग्रन्थों के और अद्वितीय और गीतात्मक भाग और मिल्टन की रचनाएँ—"मैं इन लेखकों को प्राचीनकालिक रोम और यूनान के लेखकों से अधिक श्रेयस्कर जानकर निर्वाचित करता हूँ। क्योंकि विधर्मियों की मूर्तिपूजा ने उन देशों के बड़े-बड़े कवियों के मन को इतना अधिक वशीभूत कर दिया था कि वे सगुण के विशेष रूप से गुलाम बन गये थे जिसमे हिब्रू मूर्तिपूजा से घृणा करने के कारण बच गये थे यह घृणा हमारे होमर महान् महाकाव्य के रचयिता में इतनी जोरदार थी चाहे सर्वोत्कृष्ट साहित्य ऊपरी तल से कितना ही प्रभावित क्यों न हो उसकी आत्मा हिब्रू थी। अतः उसके मन का झुकाव सभी वस्तुओं मे उदात्त की ओर था।"[1]

आर्नल्ड ने १८५३ में अपने एक निबन्ध में होमर की शैली के विषय मे केवल मात्र संकेत करते हुए लिखा है 'होमर' 'भव्य शैली' मे लिखता है। यह वाक्य साधारणतया आर्नल्ड यूनानी लेखकों के विषय मे प्रयोग करता है। पुन. अपने दो निबन्धों मे माईकिल एंजिल की 'भव्य शैली' जो अठारहवीं शती के उदात्त अनुवाद से मिलती-जुलती है।"[2]

होमर की रचनाओं का अनुवाद करते हुए वह लिखते हैं 'मेरी धारणा है कि कविता मे उदात्त शैली तभी प्रयुक्त की जाती है जब एक प्रकाण्ड विद्वान् भावपूर्ण योग्यतायुक्त-सारल्य विधि अथवा अलंकारहीनता से किसी धार्मिक विषय की व्याख्या करता है।

इसी प्रकार का प्रकरण न केवल 'तत्वार्थ' अथवा विषय वस्तु के हेतु प्रत्युत 'शैली' या क्रम के विषय मे भी उसके १८८० के निबन्ध मे दृष्टिगोचर होता है। 'तत्वार्थ' और 'शैली' दोनो मे उच्च सौन्दर्य उत्तमता और प्रतिभा का उतार-चढाव नितान्त आवश्यक है।"[3]

१. Wimsatt, William and Brooks Cleanth—Literary Criticism : *A Short History*, p. 405.
२ Homer writes in the grand style : "The phrase used in the preface of 1853 apropos of the Greeks in general and repeated during Arnold's later years in two essays in Milton, expresses a stylistic version of the 18th century michelanglesque sublime."
३. Wimsatt, William and Brooks Cleanth—Literary Criticism : A Short History, pp. 444-445.

टेनीसन के शब्दों में "वह परमानन्द जो कि एकदम पवित्र, अत्यन्त उत्कृष्ट और अपार है; मेरी धारणा है कि वह सुन्दर वस्तु के भावन या अनुचिन्तन से ही प्राप्त हो जाता है। सुन्दरता के अनुचिन्तन में ही केवल हम सम्भवतः आत्मा के आनन्दमूलक उत्कर्ष और उत्तेजना को पा सकते हैं जिसे हम काव्यगत भाव मानते हैं।"[1]

## उदात्त विषय

उदात्त विषय औदात्य अभिव्यक्ति की विशिष्टता और उत्कृष्टता का नाम है और केवल इसी के आधार पर श्रेष्ठ कवियों और लेखकों ने अपनी प्रतिष्ठा एवं यश का अर्जन किया है। सर्वप्रथम प्रश्न यह उठता है कि उदात्त अथवा अर्जित की कला जैसी कोई वस्तु है भी या नहीं। कुछ लोगों का मत है कि जो ऐसे विषयों को कला के अनुशासन के अन्तर्गत लाना चाहते हैं वे पूर्णतः भ्रम में हैं। एक विचारक का कहना है कि उदात्त प्रवृत्ति तो नैसर्गिक होती है और शिक्षा द्वारा उपलब्ध नहीं होती। प्रकृति ही ऐसी कला है जो उसे अपनी परिधि में समेट सकती है। ऐसे लोगों का विचार है कि प्रकृति की रचनाएँ कला के नियमों द्वारा म्लान होकर निकृष्टतर और पूर्णतः दुर्बल हो जाती हैं। "जो बात मनुष्य के जीवन में सही है वही उदात्त के विषय में भी है।"[2] जीवन में ऐसी कोई चीज बड़ी नहीं मानी जा सकती जिससे घृणा करना बड़ी बात समझी जाती हो इस प्रकार हमको कविता-गद्य रचनाओं के अन्तर्गत 'उदात्त' के विषय में भी यही विचार करना चाहिए। क्योंकि "सच्चे औदात्य से हमारी आत्मा जैसे अपने आप ही ऊपर उठकर गर्व से उच्चाकाश में विचरण करने लगती है तथा हर्ष और उल्लास से परिपूर्ण हो उठती है मानो जो कुछ उसने सुना है वह स्वयं उसी की अपनी कृति हो।"[3] "वास्तव में महान् रचना वही है जो बार-बार कसौटी पर कसी जाने पर भी

१. Wimsatt, William and Brooks Cleanth—Literary Criticism: A Short History, p. 478.
२. Roberts, W. Rhys—Longinus on the Sublime, p. 55
"That it is with the sublime, as in the common life of man."
३. Roberts, W. Rhys—Longinus on the sublime, p. 55
"For, as if instinctively, our soul is uplifted by the true sublime, it takes a proud flight, and is filled with joy and vaunting, as though it had itself produced what it has heard."

सदा खरी उतरे। जिससे प्रभावित होना कठिन ही नहीं लगभग असम्भव हो जाए जिसकी स्मृति इतनी प्रबल और गहरी हो कि मिटाये न मिटे। साधारणतया औदात्य के उन उदाहरणों को ही श्रेष्ठ और सच्चा मानना चाहिए जो सब व्यक्तियों को सर्वदा आनन्द दे सकें।"[1] क्योंकि जब विभिन्न रुचियों, वृत्तियों, अवस्थाओं और भाषाओं के व्यक्तियों का किसी एक ही विषय पर एक सा मत हो, तो यह निर्णय आलोच्य वस्तु के प्रति हमारी आस्था को पुष्ट बना देता है। आत्मा जैसे अपने आप ही ऊपर उठकर गर्व से उच्चाकाश में विचरण करने लगती है तथा हर्ष और उल्लास से परिपूर्ण हो उठती है।[1]

लांजायनस के करीब डेढ़ हजार वर्ष बाद १७५६ ई० में 'एडमंड वर्क' का एक निबन्ध "Essay on the sublime and beautiful" प्रकाशित हुआ। इस निबन्ध में एक मौलिक विचार प्रस्तुत किया गया है। वर्क ने कहा "जिस वस्तु या व्यापार के द्वारा शोक की कल्पना से उत्पन्न मोद की अनुभूति होती है वह 'उदात्त' है।"[2]

इनके अनुसार किसी भी भाव या संवेग की प्रकृत अनुभूति चाहे वह कष्टदायक ही क्यों न हो अपने आप में आह्लादक होती है। किसी भय या विपत्ति की अनुभूति स्वतः दुःखद प्रतीत नहीं होती है। भयदायक संवेग की अनुभूति अन्ततोगत्वा सुखदायक ही प्रतीत होती है। ब्लेड से उंगली के कटते समय की अनुभूति कष्टप्रद हो सकती है लेकिन उसकी याद दुःखद नहीं रह सकती।

वर्क ने उदात्त भाव की उत्पत्ति का मूल कारण पीड़ा या शोक स्वीकार किया है। कल्पना में किसी प्रकार का शोक सुख उत्पन्न करता है बिना शोक के उदात्त उद्भूत नहीं हो सकता। "सौन्दर्य को उन्होंने एक सामाजिक गुण कहा है।"[3] सौन्दर्य का मूलाधार सुखात्मक भाव का प्रेम है और उदात्त का मूल दुःखात्मक या शोक है। पहले का सम्बन्ध आत्म-संरक्षण और दूसरे का सामाजिक श्रेय से है। वर्क ने आश्चर्य को उदात्त के प्रभाव का सर्वोत्कृष्ट रूप माना है। प्रशंसा आदर और आस्था उदात्त के प्रभावी निम्नतर रूप कहे जा

१. डा० नगेन्द्र—काव्य में उदात्त तत्त्व, पृ० ५२-५३.
२. Burke Edmund—The Harvard Classics, Vol. 24, p. 45
"Whatever excites this delight, I call sublime."
३. Burke Edmund—The Harvard Classics, Vol. 24, p. 45
"I call beauty a social quality."
४. Burke Edmund—The Harvard Classics, Vol. 24, p. 45

सकते हैं।"[1] "प्रकृति में जो कुछ भयोत्पादक है वह उदात्त है।"[2] निःसीमता या अनन्तता के चित्रण में भी औदात्य उपलब्ध होता है। शक्तिशाली पुरुष की कल्पना या प्रत्यक्षीकरण से भी उदात्त की निष्पत्ति संभव है। शक्ति के अतिरिक्त शून्यता, निर्जनता, एकान्त, महामौन, नीरवता, महाशक्ति, घना अन्धकार आदि के चित्रण मे उदात्त देखा जा सकता है। वर्जिल के एक पद मे नीरवता और अन्धकार का औदात्यमूलक चित्रण पाते हैं। क्षेत्र और आयाम का विस्तार, विशालता उदात्त का एक सशक्त कारण होती है।"[3]

कांट ने उदात्त के दो मुख्य रूप माने हैं—गणितमूलक और गतिमूलक। प्रकृति की वे शक्तियाँ जो हमारी ज्ञानेन्द्रियों की बोधशक्ति को चुनौती देती हैं गणितमूलक उदात्त की आलम्बन हैं। ये देशकाल से आबद्ध हैं। लेकिन हमारे मानस में पराभव की भावना उत्पन्न करके पुनः हमे उदात्त की ओर ले जाती हैं। आकाश, समुद्र, हिमालय, वृद्ध आदि गणितमूलक उदात्त के आलम्बन कहे जाएंगे। गतिमूलक उदात्त में वे वस्तुएँ आलम्बन रूप मे प्रकट होती हैं "जो प्रकृति पर विजय पाने की हमारी धारणा का उपहास करती हैं। सुन्दर के लिए कांट का मत है।—रूप का होना अनिवार्य है लेकिन उदात्त कभी-कभी रूप की विकृति मे भी अभिव्यक्त होता है। काट का मत है "सौन्दर्य से मानस को भावात्मक एवं औदात्य से अभावात्मक सुख उपलब्ध होता है।"[4]

ए० सी० ब्रैडले ने उदात्त विषयक विचार में कोई मौलिक उद्भावना नहीं की है। इन्होंने अपने पूर्ववर्ती विचारकों के मतों का सरल साहित्यिक प्रतिपादन किया है। ब्रैडले ने उदात्त के आलम्बन पक्ष के विराट आकार, असीम विस्तार और अतुल वेग की भी विवेचना की है। विशेषता केवल यह है कि उन सभी तत्वों का समावेश 'असीम शक्ति' के अन्दर कर दिया है।

१. Astonishment, as I have said, is the effect of the *sublime* in its highest degree; inferior effects are admiration, reverence, and respect.
"Burke Edmund—The Harvard Classics, Vol. 24, p. 49.
२. Whatever therefore is terrible, with regard *to sight*, is sublime too.
"Burke, Edmund—The Harvard Classics, Vol. 24, p. 49.
३. Burke, Edmund—The Harvard Classics, *Vol. 24*, p. 61
"Greatness of dimension is a powerful cause of the sublime."
४. शिवबालक राय—काव्य मे सौन्दर्य और उदात्त तत्त्व, पृ० ११६.

चर्क ने उदात्त भावना का आधार भूत आवेग, भय या शोक प्रतिपादित किया है। ब्रैडले भी इसी तथ्य को स्वीकार करते हैं। औदात्य में भय का रूपान्तरण किसी और रूप में हो जाता है। वह सौन्दर्यानुभूति के समकक्ष हो जाता है। इस विवेचन में ब्रैडले ने सौन्दर्य से मिलते-जुलते पाँच शब्दों का प्रयोग किया है—"उदात्त, भव्य, सुन्दर, सुष्ठु और ललित।"[१]

ऊपर के क्रम में सुन्दर बीच में है। उदात्त और भव्य में महानता के तत्त्व निहित हैं शेष तीनों में नहीं। उदात्त में किसी न किसी रूप में महानता का प्रभाव अवश्य होता है। यह महानता देश या काल के विस्तार के रूप में प्रमाता की आत्मा को अभिभूत करती है। यदि यह तत्त्व कल्पना से निकाल दिया जाए तो औदात्य स्वतः विलीन हो जाता है।"[२]

औदात्य का कारण किसी वस्तु के आकार की विशालता नहीं अपितु उसके मूल में छिपी हुई महत्ती शक्ति है। गरुड़, सिंह, गजराज आदि आकृति के कारण नहीं बल्कि शक्ति के कारण उदात्त हैं। डीलडौल में बड़ी चीज का सुन्दर होना आवश्यक नहीं लेकिन उदात्त सुन्दर का ही रूप है।"[३]

जो अनुभूति हमारे मन में अमिट छाप छोड़ दे, जो रह-रहकर हमें ऊपर उठने को विवश करे, हमारी लघुता को गला दे, उच्चता को चमका दे, वह उदात्त है।"[४]

ब्रैडले ने कहा है कि किसी चीज को देखकर या सुनकर जब हम कह उठते हैं वाह! कितनी सुन्दर! तब उस क्षण हमारे चित्त में एक आनन्द की धारा प्रस्फुटित होती है। हमारे चित्त का विस्तार होने लगता है। वस्तु और भावक के बीच सामंजस्य होने लगता है। हमारी भावना इस समय

१. Bradlay, A. C.—Oxford Lectures on Poetry, p. 40
"Sublime, grand, "beautiful", graceful, pretty.
२. Bradlay, A. C.—Oxford Lectures on Poetry, p. 41
"Whatever strikes us as sublime produces an impression of greatness, and more of exceeding or even overwhelming greatness......remove the greatness in the imagination, and the sublimity vanishes."
३. Bradlay, A. C.—Oxford Lectures on Poetry, p. 43
"For bigness need have no beauty......while sublimity is a mode of beauty."
४. Bradlay, A. C.—Oxford Lectures on Poetry, p. 44
"It is not in the quality alone, but in the quantity of the quality, that the sublimity lies."

पूर्णतया भावात्मक या स्वीकारात्मक होती है। औदात्य की अनुभूति में चित्त में एक बलवती प्रतिक्रिया होती है आत्माभिव्यंजन का वेग फूट पड़ता है। उदात्त की अनुभूति कराने वाली महानता क्षण भर के लिए हमारे चित्त को रुद्ध करती है लेकिन दूसरे ही क्षण कल्पना लोक में प्रवेश कर वह लघुता को महानता के आयात में रूपान्तरित करती है। सीमा या लघुता को तोड़कर हम उदात्त वस्तु में मिल जाना चाहते हैं।"[1]

## उदात्त भाषा शैली

लांजायनस के निबन्ध का मुख्य प्रतिपाद्य उदात्त शैली ही है। उनका ध्यान उन तत्त्वों पर ही केन्द्रित रहा जिनके द्वारा काव्य की शैली उदात्त बनती है। स्पष्टतः ये उदात्त के बहिरंग तत्त्व हैं। स्वयं लेखक के शब्दों में 'ये कला की उपज हैं।"[2] इस प्रकार बहिरंग या कलागत तत्त्व तीन हैं— एक अलंकारों की समुचित योजना जिसके अन्तर्गत भाव और अभिव्यक्ति सम्बन्धी अलंकार आते हैं। दूसरा उत्कृष्ट भाषा—जिसके अन्तर्गत शब्द-चयन रूपकादि का-प्रयोग, भाषा की साज-सज्जा आदि गुण आ जाते हैं। तीसरा गरिमामयी अर्जित रचना विधान। लांजायनस ने विस्तार से इन तीनों पर विचार प्रकट किया है। लांजायनस ने विचार और पद-विन्यास को एक-दूसरे के आश्रित माना है। अतएव स्वभावतः उदात्त की अभिव्यक्ति का माध्यम उत्कृष्ट या गरिमामयी भाषा ही हो सकती है। भाषा की गरिमा का मूल आधार है शब्द सौन्दर्य—"सुन्दर शब्द ही वास्तव में विचार को विशेष प्रकार का आलोक प्रदान करते हैं।"[3] क्योंकि उसी के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में किसी रचना में सुन्दरतम मूर्तियों की भाँति भव्यता, सौन्दर्य मार्दव, गरिमा, ओज और शक्ति तथा अन्य श्रेष्ठ गुणों का आविर्भाव होता है और मृतप्राय वस्तुएँ जीवित हो उठती हैं। गरिमामयी भाषा का प्रयोग सर्वत्र नहीं करना चाहिए क्योंकि छोटी-मोटी बातों को भारी-भरकम संज्ञा देना किसी छोटे से बालक के

१. इस तरह 'स्व' 'उपयोगिता' तथा सीमा के उत्तरोत्तर उत्क्रमण की आवश्यकता है। यही उदात्त की सरणि का उत्तरदर्शन है।
प्रो० जगदीश पाण्डेय—उदात्त सिद्धान्त और शिल्पन प्रथम खण्ड, पृ० ७

२. Roberts, W. Rhys.—Longinus on the sublime, p. 57.
"Those which remain are partly the product of art."

३. "Beautiful words are in very truth the peculiar light of thought."
Roberts, W. Rhys.—Longinus on the sublime, p. 119

मुँह पर पूरे आकार वाला त्रासद अभिनय का मुखौटा लगा देने के समान है।"[1] बायली के अनुसार भव्य उदात्त शैली के लिए उच्च भाषा की आवश्यकता होती है किन्तु उदात्त केवल एक विचार में सम्भव हो सकता है। (एक उपमा एक उक्ति में[2]) 'पेरिइप्सुस' में उदात्त शैली को सम्पुष्ट करने वाले कई अलंकारों का उदाहरण के साथ उल्लेख हुआ है।

१. विस्तारणा—इस अलकार का प्रयोग उस समय होता है जबकि किसी समाख्यान अथवा विधि सम्बन्धी तर्कणा के प्रत्येक भाग में बहुत से आरम्भ एवं विराम स्थलों की सम्भावना हो। और उदात्त पदावली, एक के बाद एक अविच्छिन्न तथा उत्तरोत्तर क्रम से आती जाए। "विस्तारणा के किसी भी प्रयोग से यदि उदात्त को निकाल दिया जाय तो यह ऐसा होगा जैसे शरीर में से आत्मा को निकाल देना—क्योंकि उदात्त के सुदृढ़ आधार पर स्थित हुए बिना विस्तारणा के वेग की तीव्रता और उसका सार तुरन्त नष्ट हो जाता है। "विस्तारणा वह उक्तिकौशल है जिससे विषय को गरिमा प्राप्त होती है।" जबकि विस्तारणा का सम्बन्ध विस्तार और प्राचुर्य से जोड़ा जाता है।

२. शपथोक्ति—शपथों के द्वारा ओज और विश्वास की सृष्टि करता है।

३. प्रश्नालंकार—इसमें प्रश्नोत्तर की सत्वर परम्परा के द्वारा वक्ता स्वयं ही प्रश्न कर उसका समाधान प्रस्तुत करता है इस प्रकार उसका वक्तव्य अधिक उदात्त और विश्वासोत्पादक बन जाता है।"[3]

१. Roberts, W. Rhys—Longinus on the sublime, p. 119.
"*It may, however, be pointed out that stately* language is not to be used everywhere, since to invest petty affairs with great and high-sounding names would seem just like putting a full-sized tragic mask upon an infant boy."

२. Wimsatt, William and Brooks Cleanth—Literary Criticism: A Short History, p. 285
"The sublime style needs lofty language but the sublime may appear in the single thought, a figure or a phrase."

३. Roberts, W. Rhys.—Longinus on the sublime, p. 99
"As it is, the excitment, and the rapid play of question and answer, and the plan of meeting his own objections as though they were urged by another, have by the help of the figure made the language used not only more elevated but also more convincing."

४. विपर्यय अथवा व्यतिक्रम—शब्दों अथवा विचारों के सहजक्रम में उलटफेर किया जाता है।

५. पुनरावृत्ति और छिन्न वाक्य—इन अलंकारों में आत्मा के आवेग और संक्षोभ को व्यक्त किया जाता है। इस प्रकार की मनोदशा में कथन का अनुक्रम स्वतः छिन्न-भिन्न हो जाता है। प्रयोक्ता छिन्न वाक्यों और पुनरावृत्तियों का सहारा लेने लगता है।

६. प्रत्यक्षीकरण—इसमें साक्षात् वर्णन की क्षमता रहती है और समस्त वर्ण्य-विषय जीवन्त हो उठता है।

७. सार—इसमें वर्ण्य-वस्तु की उत्तरोत्तर वृद्धि की अभिव्यंजना रहती है।

८. रूप-परिवर्तन—यह अलंकार, वचन, काल, पुरुष, कारक, लिंग आदि के परिवर्तन द्वारा विषय के प्रतिपादन में विविधता और सजीवता लाता है।

९. पर्यायोक्ति—बात को प्रकारान्तर से चमत्कार के साथ कहा जाता है। मृत्यु के लिए नियत मार्ग का प्रयोग।

इनके अतिरिक्त रूपक और अतिशयोक्ति का भी उदात्त शैली के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योग है।

उदात्त शैली के अन्तर्गत लांजायनस ने बिम्ब एवं कल्पना का प्रयोग भी किया है। उनका कथन है कि बिम्ब प्रवक्ता की गरिमा, ऊर्जा और शक्ति के सम्पादन में बहुत कुछ सहायता करते हैं। बिम्ब को कुछ लोग मानसिक प्रतिकृति भी कहते हैं। इस मानसिक प्रतिकृति का निर्माण करने वाली शक्ति का नाम कल्पना है। बिम्ब का अर्थ कल्पना-चित्र ही है। कल्पना उस शक्ति का नाम है जो पहले कवि को वर्ण्य-विषय का मनसा साक्षात्कार कराती है फिर भाषा में चित्रात्मकता का समावेश कर श्रोता के मनःचक्षु के सामने भी उसे प्रत्यक्ष कर देती है।

## उदात्त विरोधी तत्त्व

औदात्य का विपरीत रूप है बालेयता। बालेय शब्द का अर्थ है बचकाना—जिसमें बच्चों के दुर्गुणों का प्राधान्य रहता है। जैसे चापल्य, गरिमा का एकान्त अभाव, संयम का अभाव, एक प्रकार की हीनता, प्रभाव, कायरता आदि। अर्थात् चंचल पदगुम्फ, असंयत वाक्-स्फीति, हीन और क्षुद्र अर्थों वाले शब्दों का प्रयोग आदि बालेय शैली के अंग हैं।

औदात्य के लिए भाषा के छिन्न-भिन्न, अस्तव्यस्त प्रवाह से अधिक

घातक वस्तु दूसरी नहीं है। साथ ही उक्ति की संक्षिप्तता से भी औदात्य का ह्रास होता है।

## अभिव्यक्ति की क्षुद्रता

लेखक के शब्दों में 'उदात्त शैली' के विरोधी तत्त्व इस प्रकार है—

१. रुचिहीन वाग्स्फीति २. भावाडम्बर ३. शब्दाडम्बर आदि।

इसी प्रकार १. अभिव्यक्ति की क्षुद्रता २. अत्यधिक संक्षिप्तता ३. जड़ाव ४. संगीत तथा लय का आधिक्य भी उदात्त शैली के लिए घातक सिद्ध होते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि विभिन्न पाश्चात्य विद्वानों ने औदात्य के विषय में अपने विभिन्न विचार प्रस्तुत किए हैं। लाजायनस के अनुसार 'उदात्त तत्त्व' शैली का महत्तम गुण है। इसके साथ ही औदात्य का प्रभाव इतना प्रबल और गहरा होता है कि वह हमारे मस्तिष्क से मिटाये नहीं मिटता। जैसे विशाल दृश्यों के वर्णन आदि का प्रभाव अधिक स्थायी होता है और वह सब दृश्य और वर्णन उदात्त के अन्तर्गत आते हैं। बॉयलो के अनुसार उदात्त से लाजायनस का आशय, उदात्त शैली से नहीं था उदात्त तो केवल एक विचार, एक अलकार या उक्ति में भी सम्भव हो सकता है। इसके पश्चात् पाश्चात्य विद्वान् जॉनसन ने उदात्त को सुन्दर से विभिन्न श्रेणी का होने की मान्यता दी। उनके अनुसार सुन्दर कुछ-कुछ आलकारिक रूप से उदात्त के निकट था। कांट ने अत्युदात्त भव्य और सुन्दर में भेद स्पष्ट किया है। हम केवल प्राकृतिक पदार्थों में भव्यता पर विचार करते हैं। प्रकृति में उदात्त के निरूपण से ही मन स्वयं द्रवित हो जाता है। भव्यता में हम जितने भी प्रकृति के विराट्, भयावने दृश्य देखते हैं वे हमें तभी भव्य प्रतीत होते हैं जब हम स्वयं सुरक्षित होते हैं। क्योंकि उस पर यह हमारी आत्मिक शक्तियों को ऊपर उठाते हैं। कॉलरिज उदात्त का सम्बन्ध महान् व्यक्तियों से मानते हैं। आर्नल्ड के अनुसार 'होमर भव्यशैली' में लिखता था। इस प्रकार से हम देखते हैं सभी पाश्चात्य विद्वानों ने उदात्त का सम्बन्ध उदात्त शैली या महान् दृश्यों, घटनाओं, व्यक्तियों से जोड़ा है। यह सभी लाजायनस के अनुसार 'उदात्त' के अन्तर्गत आते हैं।

## भारतीय विद्वानों की औदात्य-विषयक अवधारणा

उदात्त की परिकल्पना भारत के प्राचीनतम प्राप्य ग्रन्थ ऋग्वेद में भी, प्राकृतिक गरिमा एवं दैवी तत्त्वों के चित्रण के रूप में स्थान-स्थान पर

मुखरित हुई है। अर्य[1] स्वामी[2] पालक[3] उदार (पूज्य)[4] महिष्ट (पूजनीय[5] दातृतम[6]) आर्य,[7] करुण[8] उत्तम[9], अर्द्ध[10], ऊर्जस्वी[11] एवं उदार[12] आदि शब्दों का प्रयोग इसी भावना का द्योतक है।

उदात्त शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग प्रातिशाख्यों[13] में मिलता है परन्तु वहाँ इसका अर्थ वैदिक ऋचाओं के पाठ मे उच्च स्वर से उच्चरित होने वाला स्वर है। भारतीय काव्यशास्त्र के भरतमुनि के नाट्यशास्त्र मे पूर्व रंग के प्रकरण मे गान्धर्वों के मान के लिए 'उदात्त' विशेषण का प्रयोग है। वहाँ इसका स्वर उच्च स्वर मे मान भी है तथा उदात्त लेखक के निगूढ गर्व को अभिव्यक्त करने वाला पुरोचना का प्रकार भी। भारतीय काव्यशास्त्र, नाटकों एवं महाकाव्यों मे विख्यात 'उदात्त' नायक के स्वरूप का विवेचन भी नाट्यशास्त्र मे मिलता है।[14] नायक के चार प्रकारों मे धीर विशेषण सामान्य है। यथा धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त, धीरोद्धत। यहाँ धीर का अर्थ है स्वभावत.[15]। अतः नायक के विच्छेदक प्रकार उदात्त आदि ही हैं धीर नहीं।

भरतमुनि ने उदात्त की परिभाषा नही दी। मात्र इतना कहा है कि सेनापति और अमात्य धीरोदात्त कहलाते हैं। सेनापति में वीरता, नेतृत्व, धीरता[16] आदि गुण अपेक्षित हैं। अमात्य मे उच्च-विवेक, शील एवं

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | ऋग्वेद संहिता— | १,३३,३ | (मण्डल सूक्त, ऋचा | प्रथम भाग | २४४) |
| २. | " | १,८१,६ | " | " | ५०८ |
| ३. | " | २,२३,१३ | " | द्वितीय भाग | ६४ |
| ४. | " | ५,३३,६ | " | " | ८२० |
| ५. | " | ४,३१,२ | " | " | ६२८ |
| ६. | " | ८,४,१८ | " | तृतीय भाग | ५५३ |
| ७. | " | १,१०१,३ | " | प्रथम भाग | ६३१, ६३२ |
| ८. | " | १,१००,७ | " | " | ६१२ |
| ९ | " | ३,५,१० | " | द्वितीय भाग | २०१ |
| १०. | " | १,२८,१ | " | प्रथम भाग | २०७ |
| ११. | " | १०,५१,८ | " | चतुर्थ भाग | ४५५ |
| १२. | " | १०,४५,५ | " | " | ४३१ |

११. क. ऋग्वेद प्रातिशाख्य—३।४ ३।७ ६।११

ख तैत्तिरीय प्रातिशाख्य १।४२, १।४६, ५।१३ १०।१६

१४. भरत-नाट्यशास्त्रम्—वाल्यूम १ पंचम अध्याय, पृ० २४५

१५. द्विवेदी—भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा और दशरूपक, पृ० ४७

१६. सेनापतिरमात्यश्च धीरोदात्तौ प्रकीर्तितौ ॥—भरत-नाट्यशास्त्रम्, पृ० २५१

दृढ़ता आदि का होना आवश्यक है। अतः कहा जा सकता है कि भरतमुनि ने उदात्त नायक में उपर्युक्त गुणों की अपेक्षा की है।

परवर्ती काल में विभिन्न काव्यशास्त्रियों ने उदात्त नायक के गुणों को परिभाषाबद्ध किया है। इसमें धनंजय द्वारा 'दशरूपक' में दिया हुआ उदात्त नायक का स्वरूप भारतीय दृष्टि का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। धनंजय के अनुसार "महासत्व, अतिगम्भीर, क्षमावान्, आत्मप्रशंसा न करने वाला, दृढ़व्रती नायक धीरोदात्त कहलाता है। धनंजय के टीकाकारों ने यह समझाया है कि "औदात्य उत्कृष्टतम स्थिति है। जो व्यक्ति किसी प्रकार के शौर्य, त्याग, दया आदि से अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा बहुत आगे बढ़ा हुआ हो अथवा सर्वातिशायी हो वह उदात्त कहलाता है। दूसरों के अपकार से धन-संग्रह आदि में प्रवृत्त व्यक्ति धीरोदात्त नहीं कहला सकता। इस प्रकार तो चोर, लुटेरे आदि भी धीरोदात्त की परिधि में आ जायेंगे जो कि अनुचित है।"[1]

संस्कृत काव्यशास्त्र में उदात्त नायक के अतिरिक्त उदात्त शब्द का प्रयोग काव्य के एक गुण-विशेष अलंकार एवं रस के प्रसंग में भी हुआ है। जिस पर उदात्त काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष के अन्तर्गत विचार किया गया है।

## उदात्त पात्र

लांजायनस ने उदात्त पात्र विषयक कोई धारणा प्रस्तुत नहीं की है; उसने केवल उदात्त के अभिव्यक्ति पक्ष पर ही बल दिया है। किन्तु भारतीय विद्वानों ने उदात्त पात्र की कल्पना की है।

> महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
> स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः॥[2]

धीरोदात्त नायक महापराक्रमशाली, अत्यन्त गम्भीर, क्षमावान्, अपनी प्रशंसा स्वयं न करने वाला, स्थिर अव्यक्त अहंकार वाला, दृढ़व्रती आदि गुणों से युक्त होता है।

> उत्तम प्रकृतिर्वीर उत्साहः स्थायिभावकः।
> कार्यारम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते॥[3]

उत्तम पात्र में आश्रित वीररस होता है जिसका स्थायी भाव उत्साह है। कार्य

१. धनंजय—दशरूपक—द्वितीय प्रकाश, पृ० ५५-५७
२ वही, २.४
३. विश्वनाथ—साहित्यदर्पण-३

के करने मे स्थिरतर उत्कट आवेश को उत्साह कहते हैं।

अद्भुतो विस्मयस्थायिभावो । ३।२४२
विविधेपु पदार्थेदु लोकसीमातिवर्तिपु । ३।१७६
विस्फारश्चेतसो स विस्मय उदाहृतः । ३।१८०

अद्भुत रस का स्थायीभाव विस्मय होता है। लोक सीमा का अतिक्रमण करने वाले पदार्थों से उत्पन्न चित्त के विस्तार का नाम विस्मय है। ओजगुण—चित्त का विस्तार-स्वरूप दीप्तत्व 'ओज' कहाता है। वीर, बीभत्स और रौद्र रसो मे क्रम से इसकी अधिकता होती है। यहाँ भी वीर आदि शब्द उपलक्षण हैं। अतः वीराभास आदि में इसकी स्थिति जाननी चाहिए। इस प्रकार लम्बे-लम्बे समास और उद्धत रचना ओज का व्यंजन करते हैं। ओज को प्रकाशित करने वाले कठिन वर्णों से बनाये हुए अधिक समासों से युक्त उद्भट बन्ध को गौडी रीति कहते हैं।

उपर्युक्त उद्धरणों में धीरोदात्त के विवेचन के अन्तर्गत महासत्व एवं दृढव्रती और अद्भुत रस के विवेचन मे लोकसीमातिवर्ती जैसे लक्षण उदात्त के विभाव पक्ष का संकेत करते हैं। उधर उत्साह, स्थायी तथा ओज गुण के विवेचन के अन्तर्गत संरम्भ, चित्त विस्तार और दीप्तत्व मे भाव पक्ष का निर्देश है। और ओजगुण तथा गौडी रीति के लक्षणों मे ओज प्रकाशक वर्णयोजना, समास-बहुलता, उद्भट बन्ध आदि उदात्त के रीति पक्ष की ओर इंगित करते हैं। इस प्रकार संस्कृत काव्यशास्त्र मे खण्डशः उदात्त के अधिकांश लक्षणों का अनुसन्धान किया जा सकता है। फिर भी उदात्त के समग्र रूप का विवेचन वहाँ नही है। न केवल वीर उदात्त का पर्याय है और न केवल अद्भुत, वीर में विस्तार की स्थिति अनिवार्य नही है और अद्भुत में संरम्भ की। इसी प्रकार ओजगुण मे चित्त का विस्तार और दीप्ति दोनो का सद्भाव होने पर भी गरिमा और भव्यता अनिवार्य नही है। गौडीया रीति के विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है। वहाँ इन दोनो गुणो की न्यूनता रहती है। इसीलिए अधिकांश आचार्यों ने उसे काव्य की उत्कृष्ट शैली नही माना। उदात्त की कल्पना तो हमारे यहाँ थी किन्तु विधान नही है। औदात्य काव्य-कला के गौरव का मानदण्ड है।

### उदात्तीकरण एवं औदात्य में अन्तर

एक में अवचेतन का चेतन के भय से समाज ग्राह्य रूपों मे प्रकाशन है। दूसरे मे चेतन मन का निर्भय भाव से समाज-स्वीकृत रूपों की सीमाओं का विस्तारण या अतिक्रमण है। एक मे समाज के भय से तथ्य के रूपान्तरण

द्वितीय अध्याय

# छायावादी कवियों की औदात्य-विषयक अवधारणा

## विराट् विषय

छायावादी काव्य व्यक्तिनिष्ठ न होकर मूल्यनिष्ठ रहा है, उसमे व्यक्ति, मूल्य का प्रतिनिधि रहा है और जैसे-जैसे मूल्य के प्रति दृष्टिकोण का विकास होता रहा उसका व्यक्तितत्व भी विकसित होकर युग के सम्मुख एक अधिक व्यापक, आदर्शोन्मुखी तथा यथार्थ-आधृत जीवन-दृष्टि उपस्थित करने की चेष्टा करता रहा। छायावादी आदर्श विगत युगो की एकदेशीय उदात्तता को अतिक्रम कर विश्वमुखी औदात्य से अनुप्राणित रहा है। उसकी यथार्थ भावना की परिणति प्रकृति के जीव-यथार्थ से ऐतिहासिक-यथार्थ मे हुई है।[1]

छायावाद के प्रवर्तक होने का कीर्ति-किरीट प्रसाद जी के मस्तक पर रखा जाता है। "मुझे हिमालय के अचल मे प्राकृतिक सौन्दर्य-विस्मय के आकाश-चुम्बी शिखरो ने गाने को बाध्य किया, तो निराला जी को बंगाल की कला-सस्कृति-उर्वरभूमि ने अपनी प्रतिभा के मृदग मे घनगम्भीर थाप देने को आमन्त्रित किया, प्रसाद जी वरुणाअसि के तीर्थ-स्थल, भारतेन्दु की भूमि मे, भारत के महान् गौरवपूर्ण अतीत के सास्कृतिक वैभव मे अवगाहन कर अपनी धीरोदात्त स्वरो की साधना करने को प्रेरित हुए तो छायावादी काव्य के भावना मदिर परागो की गीति-मूर्ति महादेवीजी गंगा-यमुना की सगम भूमि प्रयाग मे नयी मानव-सवेदना की सरस्वती की तरह प्रकट हुई।"[2]

१. पन्त—छायावाद का पुनर्मूल्यांकन, पृ० १०२
२. वही „ ३८

निराला के अनुसार "साहित्य दायरे से छूटकर ही साहित्य है। साहित्य वह है जो साथ है, वह है जो संसार की सबसे बड़ी चीज है। साहित्य लोक से,-सीमा से,-प्रान्त से,-देश से,-विश्व से ऊँचा उठा हुआ है। इसीलिए वह लोकोत्तरानन्द दे सकता है। लोकोत्तर का अर्थ है, 'लोक' जो कुछ देख पड़ता है, उससे और दूर तक पहुँचा हुआ। ऐसा साहित्य मनुष्य-मात्र का साहित्य है, भावों से, केवल भाषा का एक देशगत आवरण उस पर रहता है।"[1] इस दृष्टि से उन्होंने काव्य में प्रकृतिचित्रण के विषय में यह मत उपस्थित किया है "जो कवि और महाकवि होते हैं वे प्रकृति के हरेक कमरे में प्रवेश करने का जन्मसिद्ध अधिकार लेकर आते हैं। यही कारण है कि जड़ और चेतन, सबकी प्रकृति कवि को अपना स्वरूप दिखा देती है। वे दर्पण हैं और प्रकृति का प्रत्येक विषय उन पर पड़ने वाला सच्चा बिम्ब है।"[2]

पन्त जी के अनुसार "कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश को है। पर्वत प्रदेश के उज्ज्वल चंचल सौन्दर्य ने मेरे जीवन के चारों ओर अपने नीरव सम्मोहन का जाल बुनना शुरू कर दिया था। मेरे मन के भीतर बर्फ की ऊँची चमकीली चोटियाँ रहस्य भरे शिखरों की तरह उठने लगी थीं जिन पर टिका हुआ रेशमी आकाश, विशाल पक्षी की तरह अपने निःस्वर नील पंख फैलाकर प्रतिक्षण जैसे उड़ने को प्रस्तुत लगता था कितने ही इन्द्रधनुष मेरे कल्पनापट पर रंगीन रेखाएँ खींच चुके थे। बिजलियाँ बचपन की आँखों को चकाचौंध कर चुकी थीं। फेनों के झरने मेरे मन को फुसला कर अपने साथ गाने के लिए वहा ले जाते और सर्वोपरि हिमालय का आकाशचुम्बी सौन्दर्य मेरे हृदय पर एक महान् सन्देश, एक स्वर्गोन्मुखी उदात्त आदर्श तथा विराट् व्यापक आनन्द, सौन्दर्य तथा तप-पूत पवित्रता की तरह प्रतिष्ठित हो चुका था। अपनी 'हिमाद्रि' शीर्षक रचना में मैंने इस अनुभूति को इस प्रकार वाणी दी है—

शिखर-शिखर ऊपर उठ तुमने
मानव आत्मा 'कर दी ज्योतित
हे असीम आत्मानुभूति में लीन
ज्योति शृंगों के भूभृत् !
सोच रहा किसके गौरव से
मेरा यह अन्तर्जगत-निर्मित,

१ निराला—प्रबन्ध-प्रतिमा, पृ० २५८-२५६
२. निराला—रवीन्द्र कविता कानन, पृ० ६७

सगता तब है प्रिय हिमाद्रि,
तुम मेरे शिक्षक रहे अपरिचित ॥"[1]

महादेवी ने दीपशिखा की भूमिका में कुछ औदात्य विषयक विचार प्रस्तुत किए हैं—

"सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य साधन है। एक अपनी एकता में असीम रहता है दूसरा अपनी अनेकता में अनन्त; इसी से साधन के परिचय-स्निग्ध खण्ड रूप से साध्य की विस्मयभरी अखण्ड स्थिति तक पहुँचने का क्रम आनन्द की लहर पर लहर उठाता हुआ चलता है।"[2] "जीवन का जो स्पर्श विकास के लिए अपेक्षित है उसे पाने के उपरान्त छोटा-बड़ा, लघु-गुरु- सुन्दर-विरूप, आकर्षक- भयानक कुछ भी कला जगत् से बहिष्कृत नहीं किया जाता। उजले कमलों की चादर जैसी चाँदनी में मुस्कराती हुई विभावरी अभिराम है पर अँधेरे के स्तर पर स्तर ओढ़कर विराट् बनी हुई काली रजनी भी कम सुन्दर नहीं। फूलों के भार से झुक-झुक पड़ने वाली लता कोमल है पर शून्य नीलिमा की ओर विस्मित ताकने वाला ठूँठ भी कम सुकुमार नहीं। अविरत जलदान से पृथ्वी को कँपा देने वाला बादल ऊँचा है पर एक बूँद ओस के भार से नत और कम्पित तृण भी कम उन्नत नहीं। गुलाब के रंग और नवनीत की कोमलता में कंकाल छिपाए हुए रूपसी कमनीय है पर झुर्रियों में जीवन का विज्ञान लिखे हुए वृद्ध भी कम आकर्षक नहीं। बाह्य जीवन की कठोरता, संघर्ष, जय-पराजय सब मूल्यवान् हैं पर अन्तर्जगत् की कल्पना स्वप्न भावना आदि भी कम अनमेल नहीं।"[3]

पन्त जी के अनुसार "कुछ के अनुसार मेरे काव्य में कोमल चित्रों का प्राधान्य और विराट् चित्रों का अभाव मेरे स्वर संगीत सम्बन्धी इसी एकांगी दृष्टिकोण के कारण है।"[4] इससे उनके मन की काव्य-संगीत सम्बन्धी भ्रान्त-धारणा स्पष्ट हो जाती है। वे परुष और विराट् को एक ही वस्तु समझते हैं। व्यंजनों की सहायता से आप परुष चित्र उपस्थित कर सकते हैं जिसके उदाहरण स्वरूप पन्त ने तुलसीमानस की पंक्ति 'घन घमंड नभ गरजत घोरा' भी दी है। किन्तु विराट् चित्रण व्यंजन-संगीत प्रधान हो, इसका कुछ भी अर्थ नहीं हो सकता। कामायनी में जहाँ विराट् चित्र आए हैं वहाँ विशेषतः व्यंजन प्रधान संगीत नहीं मिलता। यामा की भूमिका में महादेवी ने लिखा है "छायावाद

१. पन्त—रश्मिबन्ध, पृ० ६-१०
२ महादेवी—दीपशिखा—भूमिका, पृ० ११
३ महादेवी—साहित्यकार की आस्था तथा अन्य-निबंध, पृ० ३५
४ पन्त—छायावाद का पुनर्मूल्यांकन, पृ० १०४

ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दुःख मे उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई; अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओसबिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु तृण और महान् वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलाएँ, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अन्धकार और उज्ज्वल विद्युत-रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चंचलता-निश्चलता और मोह ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट् से उत्पन्न सहोदर हैं। जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसे तादात्म्य को खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा।"[1] निराला के अनुसार हमारे "नवीन साहित्य को समयानुकूल परिमार्जित और भी विराट् भावनाएँ मिलनी चाहिएँ। इतने ही से उसका दैन्य दूर नहीं होता, और न अभी उसको दिगत पुष्टि ही हुई है। जैसा भी कारण हो हिन्दी के नवीन पद्य साहित्य मे विराट् चित्रों को खीचने की तरफ कवियों का उतना ध्यान नहीं, जितना छोटे-छोटे सुन्दर चित्रों की ओर है।

काव्य में साहित्य के हृदय को दिगंत व्याप्त करने के लिए विराट् रूपों की प्रतिष्ठा करना अत्यन्त आवश्यक है। अवश्य छोटे रूपों के प्रति यहाँ कोई द्वेष नहीं दिखलाया जा रहा। रूप की सार्थक लघु-विराट् कल्पनाएँ संसार के सुन्दरतम रंगों से जिस तरह अंकित हों, उसी तरह रूप तथा भावनाओं का अरूप में सार्थक अवसान भी आवश्यक है।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी कवियों के काव्य का विषय प्रकृति के विराट् दृश्यों का वर्णन रहा है। सम्पूर्ण विश्व भी उनके लिए पर्याप्त नहीं लगता, जिससे उनकी कल्पना दिगन्त को पार कर जाती है। उनके काव्य के विषय उदात्त की कोटि में आते हैं।

## भाषा

पंत जी के अनुसार "छायावाद को लाक्षणिक प्रयोगों, अमूर्त उपमानों या अप्रस्तुत विधानों की मात्र चित्र भाषामयी शैली मानना भी केवल उसके

१ महादेवी—यामा की भूमिका, पृ० ७

२ निराला—प्रबन्ध पद्म, पृ० १६७-१६८

बाह्य कलेवर पर दृष्टिपात करना अथवा उसकी कलाबोध की प्रक्रिया के बारे मे निर्णय देकर ही सन्तोष कर लेना है। छायावाद केवल अभिव्यंजनापरक ही नही नवीन मूल्यपरक काव्य है। उसका कलाबोध महार्घ इसलिए है कि उसका भावबोध तथा मूल्य-चैतन्य नये युग के लिए अत्यन्त बहुमूल्य अथवा अमूल्य है। इसलिए उसके हृदय मे नवीन सौन्दर्यप्रबुद्ध सत्य की धड़कन है। निश्चय ही उसकी शैली के सौन्दर्य मासल-घट में अत्यन्त जीवन्त तथा प्राणवान् चैतन्य सागर लहरा रहा है जो अपने बाहरी कला-विधान की सीमा मे न समा सकने के कारण अन्तःसंचित तथा अर्धव्यक्त ही रह गया।"[1] छायावाद के शिल्पविधान के सम्बन्ध मे प्रसाद जी ने लिखा है "सूक्ष्म आभ्यन्तर भावो के व्यवहार मे प्रचलित पद-योजना असफल रही। उनके लिए नवीन शैली, नया वाक्य विन्यास आवश्यक था। हिन्दी मे नवीन शब्दो की भगिमा स्पृहणीय आभ्यन्तर वर्णन के लिए प्रयुक्त होने लगी। शब्द-विन्यास मे ऐसा पानी चढा कि उसमे एक तड़प उत्पन्न करके सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास किया गया।"[2] "छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं। अपने भीतर से मोती के पानी की तरह आन्तर स्पर्श करके भाव समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया कान्तिमयी होती है।"[3] निराला के अनुसार "शब्द-शिल्पी सगीत-शिल्पियो की नकल न करें तो बहुत अच्छा हो। कविता भावात्मक शब्दों की ध्वनि है अतएव उसकी अर्थ-व्यजना के लिए भावपूर्ण साधारणतया पढ़ना भी ठीक है किसी अच्छी कविता की रागिनी मे भरकर स्वर मे माजने की चेष्टा करके उसके सौन्दर्य को बिगाड देना अच्छी बात नही।"[4]

पन्त पल्लव की भूमिका मे लिखते है—"भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है। यह विश्व के हृतन्त्री की झकार है जिसके स्वर मे वह अभिव्यक्ति पाता है।"[5]

"कविता और मुख्यतः कविता की भाषा का प्राण राग है। राग का अर्थ आकर्षण है। यह वह शक्ति है जिसके विद्युत्स्पर्श से खिचकर हम शब्दो की आत्मा तक पहुँचते है। हमारा हृदय उनके हृदय मे प्रवेश कर एक भाव हो

१. पन्त—छायावाद का पुनर्मूल्याकन, पृ० २७
२. प्रसाद—काव्यकला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १२२
३. वही, पृ० १२६
४. निराला—रवीन्द्र कविता-कानन, पृ० १४०
५. पन्त—पल्लव भूमिका, पृ० २६

जाता है।"[1]

"भाव और भाषा का सामंजस्य उनका स्वरैक्य ही चित्रण है। जहाँ भाव और भाषा में मैत्री अथवा ऐक्य नहीं रहता, वहाँ स्वरों के पावस में केवल शब्दों के वटुसमुदाय ही, दादुर की तरह इधर-उधर कूदते, फुदकते तथा सामध्वनि करते सुनाई देते हैं।"[2]

महादेवी ने छायावादी कविता को सूक्ष्मता और कोमलता के अनुरूप उसकी भाषा में संकेतात्मकता के समावेश को स्वाभाविक माना है। "इस प्रकार की अभिव्यक्तियों में भाव रूप चाहता है अतः शैली का कुछ संकेतमयी हो जाना सहज सम्भव है।"[3]

## सौन्दर्य भावना

छायावादी भाव-बोध की दृष्टि से जहाँ, विगत वस्तु-बोध की भूमिका को छोड़कर एक ओर नवीन चैतन्य के शिखरों की ओर बढ़ा, वहाँ कला-बोध की दृष्टि से, वह काव्यशास्त्रीय जड़, अलंकार युग की सौन्दर्य धारणा से अपने को मुक्त कर, सीधा प्रकृति के मुक्त पंख प्रसारों में विचरण कर नये सौन्दर्य उपादानों की खोज में निकल गया। उसने चिर-परिचित सन्ध्या, प्रभातों, ऋतुओं की परिक्रमाओं, पर्वत के अभ्रभेदी मौन, नदी के दिग्चुम्बी प्रवाह, फूल, पल्लव, तरुमर्मर तथा अन्तरिक्ष को एक नवीन अर्थवत्ता, नवीन सौन्दर्य-चेतना प्रदान कर, नये काव्य संचरण के लिए नये कलात्मक उपकरणों का सचयन प्रारम्भ कर दिया। उसने अपनी मूर्तिविधायिनी कल्पना से प्रकृति का मानवीकरण कर मनुष्य की कला रुचि का परिष्कार करने के लिए नवीन सौन्दर्य की प्रतिमा का निर्माण किया। इस अनन्त रूपरागमयी प्रकृति के असंख्य रूपों का चित्रण कर उसने जनसंकुल नागरिक जीवन की सकीर्णता में खोए हुए मनुष्य के हृदय को उबार कर, उसके सम्मुख दिगन्त विस्तृत जीवन प्रांगण खोल दिया जिसमें उन्मुक्त साँस लेकर वह नवीन जीवन प्रेरणा ग्रहण कर सके। रूप से अधिक भाव सौन्दर्य को अभिव्यक्ति देने के कारण उसमें नये प्रतीकों, बिम्बों एवं अप्रस्तुत विधानों का प्राधान्य मिलता है। छायावाद ने भाषा की मार्वशिराओं में नये जीवन रक्त का संचार कर उसके रूप विधान को अभिनव सशक्त सौन्दर्य भंगिमा एवं शब्दों की नवचेतना अर्थवत्ता प्रदान की।

महादेवी जी दीपशिखा की भूमिका में लिखती हैं "साधारणतः मुझे भाव

१. पन्त—पल्लव भूमिका, पृ० ३१
२. वही, पृ० ३१
३. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ० ६३

के प्रति इतना सजग संवेदनशील होता है कि उसकी कल्पना उसके ज्ञान और अनुभूतियों की चित्रमय व्याख्या बन जाती है।"[1]

यहाँ बिम्ब का अर्थ स्पष्टतः कल्पना-चित्र ही है जो कवि को वर्ण्य-विषय का मनसा साक्षात्कार कराती है फिर भाषा में चित्रात्मकता का समावेश कर श्रोता के मनःचक्षु के सामने उसे प्रत्यक्ष कर देती है। इस प्रकार से कल्पना या बिम्ब भी उदात्त की कोटि में आते हैं। छायावादी कवियों ने अपने काव्य में इसका पर्याप्त प्रयोग किया है।

संक्षेप में छायावाद के लिए कह सकते हैं वह अपने प्रथम उत्थान में हमें अपनी आदर्शोन्मुखी अभिव्यंजना-शैली के अन्तर्गत उदात्त कल्पना-वैभव मौलिक सौन्दर्य-बोध, अन्तर्मुखी प्रतीक-बिम्ब विधान तथा भाव-संवेदना का वस्तून्मुखी स्थूलीकरण, प्रकृति-चित्रण तथा लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा शब्द-शक्ति की संप्रेषणीयता-सम्बन्धी समृद्धि तथा नवीन छन्दों की उन्मुक्त स्वर-लय झंकृति आदि अनेक रमणीय रागात्मक तत्त्वों को लेकर अभूतपूर्व काव्य-ऐश्वर्य के साथ अवतरित हुआ।

इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि छायावाद के प्रमुख चारों कवियों के विस्तृत एवं विशाल विराट् वर्णन, भावों की तीव्रता, भाषा, प्रतीक, बिम्ब आदि सभी पाश्चात्य काव्यशास्त्र में औदात्य के तत्त्व स्वीकार किये जाते हैं जिनका समावेश हम छायावादी कवियों के काव्य में पाते हैं। यद्यपि स्पष्ट रूप से इन कवियों ने अपनी कोई अवधारणा औदात्य के नाम से नहीं दी है किन्तु इनके काव्य में औदात्य से सम्बन्धित सभी तत्त्व प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। इस प्रकार से हम देखते हैं कि छायावाद पर पश्चिम की औदात्य-सम्बन्धी अवधारणा का पर्याप्त प्रभाव है।

१. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ० ६२-६३

जाता है।"[1]

"भाव और भाषा का सामंजस्य उनका स्वरैक्य ही चित्रण है। जहाँ भाव और भाषा मे मैत्री अथवा ऐक्य नही रहता, वहाँ स्वरों के पावस मे केवल शब्दों के बदुसमुदाय ही, दादुर की तरह इधर-उधर कूदते, फुदकते तथा साम्यध्वनि करते सुनाई देते हैं।"[2]

महादेवी ने छायावादी कविता को सूक्ष्मता और कोमलता के अनुरूप उसकी भाषा मे संकेतात्मकता के समावेश को स्वाभाविक माना है। "इस प्रकार की अभिव्यक्तियों में भाव रूप चाहता है अतः शैली का कुछ संकेतमयी हो जाना सहज सम्भव है।"[3]

## सौन्दर्य भावना

छायावादी भाव-बोध की दृष्टि से जहाँ, विगत वस्तु-बोध की भूमिका को छोडकर एक ओर नवीन चैतन्य के शिखरों की ओर बढ़ा, वहाँ कला-बोध की दृष्टि से, वह काव्यशास्त्रीय जड़, अलंकार युग की सौन्दर्य धारणा से अपने को मुक्त कर, सीधा प्रकृति के मुक्त पंख प्रसारों में विचरण कर नये सौन्दर्य उपादानों की खोज मे निकल गया। उसने चिर-परिचित सन्ध्या, प्रभातों, ऋतुओं की परिक्रमाओं, पर्वत के अभ्रभेदी मौन, नदी के दिग्चुम्बी प्रवाह, फूल, पल्लव, तरुमर्मर तथा अन्तरिक्ष को एक नवीन अर्थवत्ता, नवीन सौन्दर्य-चेतना प्रदान कर, नये काव्य संचरण के लिए नये कलात्मक उपकरणों का संचयन प्रारम्भ कर दिया। उसने अपनी मूर्तिविधायिनी कल्पना से प्रकृति का मानवीकरण कर मनुष्य की कला रुचि का परिष्कार करने के लिए नवीन सौन्दर्य की प्रतिमा का निर्माण किया। इस अनन्त रूपरागमयी प्रकृति के असंख्य रूपों का चित्रण कर उसने जनसंकुल नागरिक जीवन की संकीर्णता में खोए हुए मनुष्य के हृदय को उबार कर, उसके सम्मुख दिगन्त विस्तृत जीवन प्रागण खोल दिया जिसमे उन्मुक्त साँस लेकर वह नवीन जीवन प्रेरणा ग्रहण कर सके। रूप से अधिक भाव सौन्दर्य को अभिव्यक्ति देने के कारण उसमे नये प्रतीकों, बिम्बों एवं अप्रस्तुत विधानो का प्राधान्य मिलता है। छायावाद ने भाषा की भावशिराओं में नये जीवन रक्त का संचार कर उसके रूप विधान को अभिनव सशक्त सौन्दर्य भंगिमा एवं शब्दों की नवचेतना अर्थवत्ता प्रदान की।

महादेवी जी दीपशिखा की भूमिका में लिखती हैं "साधारणतः मुझे भाव

१. पन्त—पल्लव भूमिका, पृ० ३१
२. वही, पृ० ३१
३. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ० ६३

बाह्य कलेवर पर दृष्टिपात करना अथवा उसकी कलाबोध की प्रक्रिया के बारे में निर्णय देकर ही सन्तोष कर लेना है। छायावाद केवल अभिव्यंजनापरक ही नहीं नवीन मूल्यपरक काव्य है। उसका कलाबोध महार्घ इसलिए है कि उसका भावबोध तथा मूल्य-चैतन्य नये युग के लिए अत्यन्त बहुमूल्य अथवा अमूल्य है। इसलिए उसके हृदय में नवीन सौन्दर्यप्रबुद्ध सत्य की धड़कन है। निश्चय ही उसकी शैली के सौन्दर्य मासल-घट में अत्यन्त जीवन्त तथा प्राणवान् चैतन्य सागर लहरा रहा है जो अपने बाहरी कला-विधान की सीमा मे न समा सकने के कारण अन्तः-संचित तथा अर्धव्यक्त ही रह गया।"[1] छायावाद के शिल्पविधान के सम्बन्ध मे प्रसाद जी ने लिखा है "सूक्ष्म आभ्यन्तर भावो के व्यवहार मे प्रचलित पद-योजना असफल रही। उनके लिए नवीन शैली, नया वाक्य विन्यास आवश्यक था। हिन्दी मे नवीन शब्दो की भगिमा स्पृहणीय आभ्यन्तर वर्णन के लिए प्रयुक्त होने लगी। शब्द-विन्यास मे ऐसा पानी चढा कि उसमे एक तडप उत्पन्न करके सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास किया गया।"[2] "छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं। अपने भीतर से मोती के पानी की तरह आन्तर स्पर्श करके भाव समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया कान्तिमयी होती है।"[3] निराला के अनुसार "शब्द-शिल्पी सगीत-शिल्पियो की नकल न करें तो बहुत अच्छा हो। कविता भावात्मक शब्दों की ध्वनि है अतएव उसकी अर्थ-व्यजना के लिए भावपूर्ण साधारणतया पढ़ना भी ठीक है किसी अच्छी कविता की रागिनी मे भरकर स्वर मे माजने की चेष्टा करके उसके सौन्दर्य को बिगाड देना अच्छी बात नही।"[4]

पन्त पल्लव की भूमिका मे लिखते है—"भाषा ससार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है। यह विश्व के हृतन्त्री की झकार है जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है।"[5]

"कविता और मुख्यत' कविता की भाषा का प्राण राग है। राग का अर्थ आकर्षण है। यह वह शक्ति है जिसके विद्युत्स्पर्श से खिचकर हम शब्दो की आत्मा तक पहुंचते है। हमारा हृदय उनके हृदय मे प्रवेश कर एक भाव हो

१. पन्त—छायावाद का पुनर्मूल्यांकन, पृ० २७
२. प्रसाद—काव्यकला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १२२
३ वही, पृ० १२६
४. निराला—रवीन्द्र कविता-कानन, पृ० १४०
५. पन्त—पल्लव भूमिका, पृ० २६

इसमें सन्देह नही कि तथाकथित छायावाद मात्र चित्रभाषामयी अभि-व्यंजना शैली या सन्तों की आध्यात्मिक अनुभूतियों की अनुकृति, रहस्यवादी कल्पना या पश्चिम से उधार ली गई स्वच्छन्दतावादी, व्यक्तिनिष्ठ, विद्रोह भरी आत्माभिव्यक्ति ही नही है, वह नवीन अन्तःसौन्दर्य से प्रेरित कलाबोध के दीप-दान पर चतुर्दिक् नवीन जीवन-सौन्दर्य तथा भावप्रकाश बिखेरती हुई चेतना की ऊर्ध्वमूल्य शिखा है जो व्यापक विश्व-ऐक्य तथा लोकसाम्य के अजस्र स्नेह-धार से पोषित मूर्तिमान मानव-मंगल का काव्य है। छायावाद मध्ययुगों के कुहासों से भरे आकाश मे खोए हुए, परलोकवादी, जीवन-निषेध-कुण्ठित, आत्ममुक्तिकामी अध्यात्म को पुनः जीवन-सक्रिय बनाकर मानव-मन तथा धरती के जीवन के निकट ही नही लाया, उसकी अन्तःप्रेरणा तथा रस-सौन्दर्य की शक्ति के कारण युग-जीवन तथा युग-मानस के निर्माण मे भी नवीन स्फूर्ति का संचार हो सका। उसकी अमृत-चैतन्य की धारा के चतुर्दिक् फैले अनेक वादो, विमर्शों, सिद्धान्तो तथा आस्थाओ को रेती के चमकीले प्रसार में निःसन्देह छायावादी कवियों की अबोध मृगदृष्टि जब-तब सत्याभास की मृगतृष्णा में भटक गई है, पर वे भ्रान्तचरण छायावाद की मुख्य अभीप्सा के द्योतक कभी भी नही रहे हैं।

संक्षेप मे औदात्य की अभिव्यक्ति का माध्यम उत्कृष्ट या गरिमामयी भाषा ही हो सकती है। भाषा की गरिमा का मूल आधार है शब्द-सौन्दर्य, जिसका अर्थ है उपयुक्त और प्रभावक शब्द प्रयोग। सुन्दर शब्द ही वास्तव में विचार को विशेष प्रकार का आलोक प्रदान करते हैं उन्हीं के द्वारा किसी रचना में सुन्दरतम मूर्तियो की भाँति भव्यता, सौन्दर्य, मार्दव, गरिमा, ओज और शक्ति तथा अन्य श्रेष्ठ गुणों का आविर्भाव होता है और मृतप्राय वस्तुएँ जीवन्त हो उठती हैं।"[1] छायावादी कवियो ने अपने काव्य मे सुन्दर शब्दों की अभिव्यक्ति की है जिससे उनकी भाषा उदात्त भाषा कहलाती है।

## अलंकार

पन्त के अनुसार "अलकार केवल वाणी की सजावट के लिए नही, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं। वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति, नीति हैं, पृथक् स्थितियों के पृथक् स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं। जैसे वाणी की झंकारें विशेष घटना से टकराकर फेनाकार हो गई हों, विशेष भावों के झोके खाकर बाल-लहरियों, तरुण तरंगों मे फूट गई हों। कल्पना के विशेष बहाव में पड़ावर्ती मे नृत्य करने लगी हों। ये वाणी

१. डॉ० नगेन्द्र—काव्य मे उदात्ततत्व, पृ० ६१

विचार और कर्म का सौन्दर्य समान रूप से आकर्षित करता है, इसी से किसी एक में जीवन की पूर्णता पा लेना मेरे लिए सहज नहीं। भाव और विचारजगत की सब सीमाएँ न छू सकने पर भी मेरे कर्मक्षेत्र की विविधता कम सारवती नहीं।"[1]

महादेवी के अनुसार "सौन्दर्य अपने समर्थन के लिए जिस सामंजस्य की ओर इंगित करता है विरूपता भी अपने विरोध के लिए उसी की ओर संकेत करती है, पर दोनों के संकेत में अन्तर है। प्रत्येक सौन्दर्य खण्ड अखण्ड सौन्दर्य से जुड़ा है इस तरह हमारे हृदयगत सौन्दर्यबोध से भी जुड़ा है, पर विरूप, व्यापक सामंजस्य का विरोधी होने के कारण हमारे भीतर कोई स्वभावगत स्थिति नहीं रखता। सौंदर्य से हमारा वह परिचय है जो अनन्त जलराशि में एक लहर का दूसरी लहर से होता है, पर विरूपता से हमारा वैसा ही मिलन है जैसे पानी में फेंके हुए पत्थर और उससे उठी लहर में सहज है। सौन्दर्य चिर-परिचय में भी नवीन है, पर विरूपता अति परिचय में नितान्त साधारण बन जाती है, इसी से सौन्दर्य की रहस्यानुभूति ही, अन्तहीन काव्य-कथा में नये परिच्छेद जोड़ती रही है।"[2]

प्रसाद जी के अनुसार "ग्रीस द्वारा प्रचलित पश्चिमी सौन्दर्यानुभूति बाह्य को, मूर्त्त को, विशेषता देकर उसकी सीमा में ही उसे पूर्ण बनाने की चेष्टा करती है और भारतीय विचारधारा ज्ञानात्मक होने के कारण मूर्त और अमूर्त का भेद हटाते हुए बाह्य और आभ्यन्तर का एकीकरण करने का प्रयत्न करती है।"[3]

पन्त रश्मिबन्ध की भूमिका में अपने सौन्दर्य सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं "शैली, कीट्स, टैनिसन आदि कवियों से मैंने बहुत कुछ सीखा। मेरे मन में शब्द-चयन और ध्वनि-सौन्दर्य का बोध पैदा हुआ। पल्लव काल की प्रमुख रचनाओं का प्रारम्भ इसके बाद ही होता है। प्रकृति-सौन्दर्य प्रकृति-प्रेम की अभिव्यंजना पल्लव में अधिक प्राजल तथा परिपक्व रूप में हुई है। वीणा की विस्मय भरी रहस्यप्रिया बालिका अधिक मांसल, सुरुचि सुरंगपूर्ण बनकर, प्रायः मुग्धा युवती का हृदय पाकर, जीवन के प्रति अधिक संवेदनशील होकर 'पल्लव' में प्रकट हुई है। इस प्रकार प्रकृति की रमणीय वीथिका से होकर ही मैं काव्य के भाव विशद सौन्दर्य प्रासाद में प्रवेश पा सका।"[4]

१. महादेवी—दीपशिखा की भूमिका, पृ० ६१
२. वही, पृ० ३०
३. प्रसाद—काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ३६
४. पन्त—रश्मिबन्ध, पृ० ११

इसमें सन्देह नही कि तथाकथित छायावाद मात्र चित्रभाषामयी अभिव्यंजना शैली या सन्तों की आध्यात्मिक अनुभूतियों की अनुकृति, रहस्यवादी कल्पना या पश्चिम से उधार ली गई स्वच्छन्दतावादी, व्यक्तिनिष्ठ, विद्रोह भरी आत्माभिव्यक्ति ही नही है, वह नवीन अन्तःसौन्दर्य से प्रेरित कलाबोध के दीपदान पर चतुर्दिक् नवीन जीवन-सौन्दर्य तथा भावप्रकाश बिखेरती हुई चेतना की ऊर्ध्वमूल्य शिखा है जो व्यापक विश्व-ऐक्य तथा लोकसाम्य के अजस्र स्नेह-धार से पोषित मूर्तिमान मानव-मंगल का काव्य है। छायावाद मध्ययुगों के कुहासों मे भरे आकाश मे खोए हुए, परलोकवादी, जीवन-निषेध-कुण्ठित, आत्ममुक्तिकामी अध्यात्म को पुनः जीवन-सक्रिय बनाकर मानव-मन तथा धरती के जीवन के निकट ही नही लाया, उसकी अन्तःप्रेरणा तथा रस-सौन्दर्य की शक्ति के कारण युग-जीवन तथा युग-मानस के निर्माण में भी नवीन स्फूर्ति का संचार हो सका। उसकी अमृत-चैतन्य की धारा के चतुर्दिक् फैले अनेक वादों, विमर्शों, सिद्धान्तों तथा आस्थाओं की रेती के चमकीले प्रसार में निःसन्देह छायावादी कवियों की अबोध मृगदृष्टि जब-तब सत्याभास की मृगतृष्णा में भटक गई है, पर वे भ्रान्तचरण छायावाद की मुख्य अभीप्सा के द्योतक कभी भी नही रहे हैं।

संक्षेप में औदात्य की अभिव्यक्ति का माध्यम उत्कृष्ट या गरिमामयी भाषा ही हो सकती है। भाषा की गरिमा का मूल आधार है शब्द-सौन्दर्य, जिसका अर्थ है उपयुक्त और प्रभावक शब्द प्रयोग। सुन्दर शब्द ही वास्तव मे विचार को विशेष प्रकार का आलोक प्रदान करते हैं उन्ही के द्वारा किसी रचना में सुन्दरतम मूर्तियों की भाँति भव्यता, सौन्दर्य, मार्दव, गरिमा, ओज और शक्ति तथा अन्य श्रेष्ठ गुणों का आविर्भाव होता है और मृतप्राय वस्तुएँ जीवन्त हो उठती हैं।"[1] छायावादी कवियों ने अपने काव्य में सुन्दर शब्दों की अभिव्यक्ति की है जिससे उनकी भाषा उदात्त भाषा कहलाती है।

## अलंकार

पन्त के अनुसार "अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नही, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं। वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति, नीति हैं, पृथक् स्थितियों के पृथक् स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं। जैसे वाणी की झंकारें विशेष घटना से टकराकर फेनाकार हो गई हों, विशेष भावों के झोंके खाकर बाल-लहरियों, तरुण तरंगों मे फूट गई हों। कल्पना के विशेष बहाव मे पड़ावर्तों मे नृत्य करने लगी हों। ये वाणी

१. डॉ० नगेन्द्र—काव्य में उदात्ततत्व, पृ० ६१

के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हावभाव हैं। जहाँ भावों की जाली केवल अलंकारों के चौखटे में फिट करने के लिए बुनी जाती है वहाँ भावों की उदारता शब्दों की कृपण जड़ता में बंधकर सेनापति के दाता और सूम की तरह 'इकसार' हो जाती है।

जिस प्रकार संगीत में सात स्वर तथा उनकी श्रुति मूर्छनाएँ केवल राग की अभिव्यक्ति के लिए होती हैं और विशेष स्वरों के योग, उनके विशेष प्रकार के आरोह-अवरोह से विशेष राग का स्वरूप प्रकट होता है उसी प्रकार कविता में भी विशेष अलंकारों, लक्षणों, व्यंजना आदि विशेष शब्द-शक्तियों तथा विशेष छन्दों के सम्मिश्रण और सामंजस्य से विशेष भाव की अभिव्यक्ति करने में सहायता मिलती है।"[1]

छायावादी काव्य में भी औदात्य के साधक अलंकारों—उपमा, रूपक, इनेगिने छन्दों की पुनरावृत्ति तथा प्राचीन प्रतीकों, बिम्बों आदि की पुनरुक्ति मिलती है।

पन्त जी अलंकारवादी कवि नहीं हैं तथापि उन्होंने काव्य में अलंकार का सर्वथा निषेध भी नहीं किया है। उनके अनुसार "कविता में भी विशेष अलंकारों के से विशेष भाव की अभिव्यक्ति करने में सहायता मिलती है।"[2] इससे उनका मत है कि काव्य में अलंकार भाव के स्पष्टीकरण और उत्कर्ष के लिए प्रयुक्त होते हैं। इस सम्बन्ध में रवीन्द्र कवीन्द्र का मन्तव्य भी यही है "साहित्य भी अपनी चेष्टा को सफल करने के लिए अलंकारों का, रूपकों का, छन्दों का और आभास इंगितों का सहारा लेता है। दर्शन और विज्ञान के समान निरलंकृत होने से उसका गुजारा नहीं हो सकता।"[3]

उदात्त शैली के निर्माण में अलंकारों का प्रयोग तो आवश्यक ही है किन्तु उससे भी अधिक आवश्यक होता है अलंकार प्रयोग का औचित्य, जो स्थान, ढंग, परिस्थिति पर निर्भर रहता है अर्थात् भव्य से भव्य अलंकार भी उसी स्थिति में उदात्त का पोषक हो सकता है जब उसका प्रयोग स्थान, परिस्थिति और उद्देश्य के अनुकूल हो। वास्तव में अलंकार प्रयोग की सार्थकता तो तब है जब वह प्रसंग का सहज अंग बनकर आए और इस बात पर किसी का ध्यान न जाए कि यह अलंकार है।"[4]

१. पन्त—पल्लव, पृ० ३२
२. वही, पृ० १६
३. रवीन्द्रनाथ टैगोर—मूल साहित्य—अनुवादक वंशीधर
४. डॉ० नगेन्द्र—काव्य में उदात्ततत्त्व, पृ० ७७

## कल्पना या बिम्ब

जहाँ तक छायावादी कल्पना का प्रश्न है औदात्य में कल्पना तत्त्व की भी प्रधानता रहती है। छायावाद को यदि 'इमेजिनेशन' का कोरा अनुवाद न मान लिया जाय तो यथार्थ बोध के विरोधी बोध के लिए प्रयुक्त होता है। कल्पना ही वास्तव में वह अनुभूतिग्राहिणी तथा रूपविधायिनी शक्ति है जो काव्य का प्राण है। वस्तु के रूप में प्रच्छन्न कवित्व का उद्‌घाटन उसी की सहायता से सम्भव है। यहाँ तक कि वर्णात्मक काव्य को सँजोने तथा मार्मिक बनाने में भी उसी का प्रमुख हाथ रहा है। कोई भी गम्भीर व्यापक तथा महत्त्वपूर्ण अनुभूति काल्पनिक होती है। पन्त के अनुसार वाल्मीकि या तुलसी रामायण का राम-रावण-युद्ध या सीता अपहरण के बाद रामविलाप का चित्रण, वाल्मीकि या तुलसी की व्यक्तिगत अनुभूति न होकर मात्र काल्पनिक अनुभूति है।

मानव-चेतना के उच्च तथा सूक्ष्म संवेदनों को अपने अन्तरतम उन्मेषों के प्रकाश में नये बिम्बों तथा प्रतीकों एवं नयी काव्यवस्तु के रूप में वाणी देने की कृच्छ प्रसव-वेदना छायावाद के उत्कट साहस की द्योतक एक महत् युग कर्म तथा सृजन-साधना की उपलब्धि एव भावयोग की सिद्धि रही है जिसके चतुर्दिक् घिरे वाष्पों में, निस्सन्देह अनेक चित्तमयी अभिव्यंजना के इन्द्रधनुष स्वतः अपने ही कला-स्पर्श से स्फुरित हो उठे।

दीपशिखा की भूमिका मे महादेवी कहती हैं—"कलाओं में चित्र ही काव्य का अधिक विश्वस्त सहयोगी होने की क्षमता रखता है। मूर्त्ति कठिनतम सीमाओ मे बँधी होने के अतिरिक्त रंगों की पृष्ठभूमि असम्भव कर देती है। उसमें एक ही भाव को मूर्तिमत्ता दी जा सकती है और वह भी रंगहीन।"[१]

प्रसाद जी ने छायावादी दृष्टिकोण के अनुरूप उसमें कल्पना के सौन्दर्य का समावेश करने पर भी बल दिया है। कल्पना को कविता का आवश्यक उपादान मानकर उन्होंने कामायनी के विषय मे यह लिखा है—"कामायनी की कथा-शृंखला मिलाने के लिए कहीं-कहीं थोड़ी-बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार मैं नहीं छोड़ सका हूँ।"[२]

महादेवी के अनुसार "कल्पना के सम्बन्ध मे यह स्मरण रखना उचित है कि वह स्वप्न से अधिक, ठोस धरती चाहती है। प्राय. परिचित और प्रिय वस्तुओं से सम्बन्ध रखने के कारण उसका विदेशीय होना सहज नहीं। विशेषत: प्रत्येक कवि और कलाकार अपने संस्कार, जीवन तथा वातावरण के

१. महादेवी—दीपशिखा, पृ० ५६

२. प्रसाद—कामायनी—आमुख, पृ० ८

के प्रति इतना सजग संवेदनशील होता है कि उसकी कल्पना उसके ज्ञान और अनुभूतियों की चित्रमय व्याख्या बन जाती है।"[1]

यहाँ बिम्ब का अर्थ स्पष्टतः कल्पना-चित्र ही है जो कवि को वर्ण्य-विषय का मनसा साक्षात्कार कराती है फिर भाषा में चित्रात्मकता का समावेश कर श्रोता के मनःचक्षु के सामने उसे प्रत्यक्ष कर देती है। इस प्रकार से कल्पना या बिम्ब भी उदात्त की कोटि मे आते हैं। छायावादी कवियों ने अपने काव्य मे इसका पर्याप्त प्रयोग किया है।

संक्षेप में छायावाद के लिए कह सकते है वह अपने प्रथम उत्थान में हमें अपनी आदर्शोन्मुखी अभिव्यंजना-शैली के अन्तर्गत उदात्त कल्पना-वैभव मौलिक सौन्दर्य-बोध, अन्तर्मुखी प्रतीक-बिम्ब विधान तथा भाव-संवेदना का वस्तून्मुखी स्थूलीकरण, प्रकृति-चित्रण तथा लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा शब्द-शक्ति की सम्प्रेषणीयता-सम्बन्धी समृद्धि तथा नवीन छन्दो की उन्मुक्त स्वर-लय झंकृति आदि अनेक रमणीय रसात्मक तत्त्वों को लेकर अभूतपूर्व काव्य-ऐश्वर्य के साथ अवतरित हुआ।

इस प्रकार सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि छायावाद के प्रमुख चारों कवियो के विस्तृत एवं विशाल विराट् वर्णन, भावो की तीव्रता, भाषा, प्रतीक, बिम्ब आदि सभी पाश्चात्य काव्यशास्त्र में औदात्य के तत्त्व स्वीकार किये जाते हैं जिनका समावेश हम छायावादी कवियों के काव्य मे पाते हैं। यद्यपि स्पष्ट रूप से इन कवियो ने अपनी कोई अवधारणा औदात्य के नाम से नहीं दी है किन्तु इनके काव्य मे औदात्य से सम्बन्धित सभी तत्त्व प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होते हैं। इस प्रकार से हम देखते हैं कि छायावाद पर पश्चिम की औदात्य-सम्बन्धी अवधारणा का पर्याप्त प्रभाव है।

१. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ० ६२-६३

तृतीय अध्याय

# महान् धारणाओं की क्षमता

महान् धारणाओ से तात्पर्य है ऐसी घटनाओं, दृश्यों, पदार्थों अथवा व्यक्तियों का वर्णन जिन्हें पढ़कर पाठक के मन पर गहरा प्रभाव पड़े जिसकी स्मृति इतनी प्रबल और गहरी हो कि मिटाये न मिटे। महान धारणाओं का दूसरा क्षेत्र वह विचार-सम्पदा है जो पाठक के मन को केवल चमत्कृत ही नहीं करती वरन् प्रभावित भी करती है और मानवीय मूल्यों के निर्धारण मे योग देती है। जिस काव्य में ऐसी वैचारिक, भावनात्मक, वर्णनात्मक, चरित्रात्मक सम्पदा नहीं होती वह महान् धारणाओं से भिन्न होता है और उदात्त का स्पर्श नहीं कर पाता। छायावादी काव्य में महान् धारणाओं की यह क्षमता विविध रूपों मे प्रतिफलित हुई है।

## आत्मप्रसार

"छायावादी कवियों ने जो आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा प्रकट की, वह वस्तुतः आत्मप्रसार की आकांक्षा थी। पुरानी दुनिया की सीमित चार दीवारी के भीतर उसका दम घुट रहा था। नये विज्ञान ने उसके सामने संसार का विराट् रूप रख दिया। एक ओर नये-नये देश परिचय की सीमा में आए दूसरी ओर प्रकृति की विराटता का बोध हुआ। आत्मप्रसार की इस आकांक्षा मे कवि की पहली टक्कर पुरानी रूढ़ियों से हुई।"[1] 'पंचवटी प्रसंग' मे निराला के राम सीता को आत्मप्रसार का उपदेश देते हुए पारिवारिक सीमाओं की ओर संकेत करते हैं—

१. नामवर सिंह—छायावाद, पृ० २१

छोटे-से घर की लघु सीमा में
बँधे हैं क्षुद्र भाव,
यह सच है प्रिये
प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है ।।[1]

घर की लघु सीमा में बँधे रहने के कारण रीतिकाल के कवियों का सारा प्रेम संकीर्ण भावों और चेष्टाओं तक ही सीमित रह गया।

आत्मप्रसार की भावना ने केवल परिवार की चार दीवारी पर ही प्रहार नहीं किया वस्तुतः उसने जीवन के सभी क्षेत्रों में संकीर्णता का विरोध किया। 'धन का उद्‌बोधन' करते हुए निराला कहते हैं—

ताल-ताल से रे सदियों के जकड़े हृदय-कपाट,
खोल दे कर-कर कठिन प्रहार,
आये अभ्यंतर संयत चरणों से नव्य विराट,
करे दर्शन, पाये आभार ।।[2]

कवि सदियों से जकड़े हृदय-कपाट को खोलकर नव्य विराट् के आगमन की आकांक्षा कर रहा था। उसका हृदय हर तरह की संकीर्णता का विरोधी था। उसकी इच्छा थी कि 'एक कर दे पृथ्वी आकाश।'

उसकी सारी विराटता संपूर्ण धरती से भी सन्तुष्ट नहीं थी वह अपनी बाँहों में एक ही साथ सारी धरती और अनन्त आकाश को बाँध लेने का हौसला रखता था।

अतीत के प्रेमी प्रसाद जी में भी रूढ़िमुक्त मन के आत्मविकास का आभास मिलता है। उन्होंने न तो निराला की तरह रूढ़ियों के विरुद्ध दुर्द्धर्ष विद्रोह किया और न पंत की तरह प्राचीनता-जनित पीड़ा का स्पष्ट आभास दिया, फिर भी उन्होंने यथास्थान आधुनिक मानव के आत्मप्रसार का उल्लेख किया है।

प्रसाद प्राचीन रूढ़ियों के विरोधी अवश्य थे लेकिन ध्वस्त होते हुए प्राचीन के प्रति उनके मन में बड़ी ममता थी। महाप्रलय में देव-सृष्टि के ध्वंस पर चिन्ता करते हुए मनु व्यथित प्रसाद के ही हृदय की व्यथा प्रकट करते हैं। 'गया सभी कुछ गया' एक ओर यदि वे अतीत की ममता छोड़ने में असमर्थ थे तो दूसरी ओर आधुनिक मानव के वैज्ञानिक विकास से भी बहुत

१. निराला—परिमल, पृ० २१५
२. निराला—अनामिका, पृ० ६८

कुछ सन्तुष्ट नही थे। अपने इन सिद्धान्तों के बावजूद भी वे आधुनिक मनु के विकास को लक्षित करते हैं जो स्वयं कहता है—

वन, गुहा, कुज, मरु अंचल मे हूँ खोज रहा अपना विकास।[1]

और जिसका गत्वर व्यक्तित्व अबाधगति मरुत सदृश है। जो सकल अग-जग को पार करता हुआ इतने वेग से आगे बढ रहा है कि उसके प्रतिपग में कम्पन की तरंग उठ रही है।

प्रसाद ने जीवन की विभीषिकाओ एवं विषमताओं को समीप से देखा एवं झेला था। इनके मूल कारण को समझने एवं समस्या का सुलझाव ढूँढ़ने के लिए उन्होने मनुष्य को एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य मे देखा। इस प्रक्रिया में सुदूर अतीत का अवगाहन किया अतएव अतीत प्रेम प्रसाद के साहित्य की प्रमुख विशेषता है।

अतीत के अवगाहन का उदात्त एवं धनपक्ष यह है कि वह हमारे भावों को विवेकानुमोदित अभ्यास एवं सुदृढ़ आधार देता है फलस्वरूप वर्तमान परिस्थितियो के सन्दर्भ में हमारी प्रतिक्रिया संयत तथा हमारी वृत्तियो में राग-द्वेषों का प्रसार अपेक्षाकृत सन्तुलित हो जाता है। अतीत मोह का अनुदात्त एवं ऋणपक्ष यह है कि इससे व्यक्ति की दृष्टि कुण्ठित, भावनाएँ जड तथा प्रतिक्रिया रूढ एवं यान्त्रिक हो जाती है। फलस्वरूप व्यक्ति पिछड़ जाता है। नवीन परिस्थितियों के सन्दर्भ मे प्रतिक्रिया क्षोभ एवं उपहास का कारण बन जाती है। प्रतिभाशाली कलाकार मे अतीत का धनपक्ष अभिव्यक्ति पाता है। प्रसाद साहित्य में भी वही अधिक अभिव्यक्त हुआ है।

पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष कर रहे भारतीय जनमानस को प्रसाद ने एक ओर भारतीय इतिहास के गरिमामय रूप मे परिचित करवा कर आत्मगौरव की प्रेरणा दी, दूसरी ओर मानव की प्रकृति, नियति एवं परिवर्तन की खोज में प्रेम, साहस, त्याग, करुणा, उदारता, वीरता आदि प्रवृत्तिमूलक भावों के उदात्त पक्ष पर बल दिया। इनके काव्य में टीस, वेदना, निराशा, आँसू भी पर्याप्त मात्रा में हैं परन्तु इन सबकी परिणति सर्वग्राही आनन्द मे करने का प्रयास किया गया है। मानव-जीवन को प्रसाद ने एक विशाल एवं अर्थपूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखा है। अतः इनके कथानकों का आधार-क्षेत्र प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक मन्त्र-युग तक विस्तृत है। इनमे वैदिक, पौराणिक, बौद्ध, मौर्य, शुग एवं राजपूत काल भी समाविष्ट हैं। इस विशाल और गम्भीर अध्ययन मे न तो संकीर्णता है न ही सब ही समन्वय-

१. प्रसाद—कामायनी, इड़ा सर्ग, पृ० १७०

सूक्तियाँ। एक ओर उन्होंने इतिहासकार की भाँति अतीत की कुहराच्छन्न सामग्री को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है, दूसरी ओर प्रेम और कर्त्तव्य, क्षमा और प्रतिशोध एवं विजय-पराजय आदि के माध्यम से मानव को व्याख्यायित करने का और भारतीय संस्कृति के उदात्तपक्ष को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। इनका यह सारा प्रयास मानव-केन्द्रित है। मनुष्य के उद्धार और उन्नयन के लिए है।[1] अतः सहज ही प्रसाद काव्य की औदात्य सम्बन्धी उपलब्धियों एवं सीमाओं का मूल्यांकन कामायनी के आधार पर हो सकता है। यद्यपि प्रसाद साहित्य में एक साथ मुक्तप्रेम एवं आदर्शवादिता, स्वच्छन्द कल्पना एवं आभिजात्य संयम, भावों की ऊष्मा एवं सूक्ष्म अतीन्द्रिय रूपचित्रण, वैदिक आर्यों की दीप्ति एवं बौद्ध करुणा तथा प्रकृति के अनेकों कोमल एवं विराट् चित्र उपलब्ध होते हैं फिर भी प्रमुख स्वर चिन्तक या मनीषी का है।

महादेवी में आत्मप्रसार की भावना असीम रूप में व्यक्त हुई है। इस सत्य को महादेवी जी ने अनेक गीतों में प्रकट किया है। सामाजिक सीमा से यह मन इतना घबरा उठा था कि फिर कल्पना-लोक में किसी प्रकार की सीमा स्वीकार करने को तैयार न था। महादेवी कहती हैं—

> द्रुत पखों वाले मन को
> तुम अन्तहीन नभ होना;

फिर उस अन्तहीन नभ में—

> आते जाते मिट जाऊँ
> पाऊँ न पथ की सीमा।।[2]

यह भावना प्रसाद, निराला और पंत सबमें थोड़ी-बहुत मिलती है।

## विराटता का बोध

निराला जी के अनुसार बंगला साहित्य ने जो आधुनिक युग में इतनी अधिक उन्नति की, वह इसी नये विज्ञान और नई संस्कृति का ही परिणाम है। इसी व्यापक भावना के कारण रवीन्द्रनाथ के चित्रों में विराटता के दर्शन होते हैं। इसलिए उन चित्रों का उदाहरण देकर निराला ने हिन्दी में भी 'हृदय' को दिगन्त व्याप्त करने के लिए विराट् रूपों की प्रतिष्ठा करने पर जोर दिया।

१. हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० १४८
२. महादेवी वर्मा—रश्मि, पृ० २१

स्वयं निराला जी जब तरंग से पूछते हैं—

किस अनंत का नीला अंचल हिला-हिलाकर
आती हो तुम सजी मडलाकार ?[1]

और—

आज तुम्हारा किस विशाल वक्षःस्थल में
अवसान ?[2]

वे नदी की तरंग के माध्यम से अपने विशाल हृदय की तरंग को ही प्रकट करते हैं। विराट् की आकांक्षा मे अपनी रूढिगत सीमाओं को तोड़ने का कितना साहस था। पुराने वातावरण में स्वय पंत जी का भी दम किस प्रकार से घुट रहा था यह 'पल्लव' की उसी भूमिका मे आगे के इन शब्दों से प्रकट है—"हम इस ब्रज की जीर्ण-शीर्ण छिद्रों से भरी पुरानी छींट की चोली को नहीं चाहते, इसकी संकीर्ण कारा में बन्दी हो हमारी आत्मा वायु की न्यूनता के कारण सिसक उठती है और हमारे शरीर का विकास रुक जाता है।"[3]

विराट् के उपासक निराला मे यह भावना विराट् प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त होती है तो कहीं शक्तिरूपिणी माँ के प्रतीक रूप से। निराला के तुलसी दास का मन चित्रकूट की प्रकृति का परिचित रूप देखकर असीम उन्मुक्त आकाश में उड़ चलता है। प्रकृति उनके भावुक हृदय में पंख लगा देती है।

वह उस शाखा का वन विहंग
उड़ गया मुक्त नभ निस्तरंग
छोड़ता रंग पर रंग, रंग पर जीवन ॥[4]

'राम की शक्तिपूजा' मे जब सहसा आकाश मे अंजना के स्वरूप को प्रत्यक्ष पाते हैं। अंजना ने हनुमान से कहा—

"तुमने रवि को जब लिया निगल
तब नहीं बोध था तुम्हें; रहे बालक केवल;[5]

१. निराला—परिमल, पृ० ७६
२. वही, पृ० ७७
३. पंत—पल्लव की भूमिका, पृ० २४
४. निराला—तुलसीदास, पृ० २२
५. निराला—अपरा, पृ० ३८

इसी प्रकार से शक्ति का प्रकट होना, विशाल दृश्य और विराट भावों का सफल चित्रण, हनुमान की व्योम कल्पना यह सब महान् घटनाएँ हैं। सभी ओर भव्यता, विशालता के ही दर्शन होते हैं।"[1]

निराला द्वारा रचित तुलसीदास में भी विराट् चित्र प्राप्त होते हैं—

जागा जागा संस्कार प्रबल,
रे गया काम तत्क्षण वह जल,
देखा, वामा वह न थी, अनल प्रतिमा वह;
इस ओर ज्ञान, उस ओर ज्ञान,
हो गया भस्म वह प्रथम भान,
छूटा जग का जो रहा ध्यान, जड़िमा वह।[2]

या

देखा, शारदा नील-वसना,
है सम्मुख स्वयं सृष्टि-रशना,
जीवन-समीर-शुचि-निःश्वसना वरदात्री,
वीणा वह स्वयं सुवादित स्वर,
फूटीं तर अमृताक्षर-निर्झर,
यह विश्वहंस है चरण सुघर जिस पर श्री।।[3]

महाप्राण निराला के विराट् व्यक्तित्व का पूर्ण तादात्म्य इसी प्रकृति पुरुष बादल से ही सम्भव है। 'बादल' पर लिखी उनकी दर्जनों कविताएँ इनका ज्वलन्त और जीवित साक्ष्य उपस्थित करती हैं। निराला के भैरव घोष-भरे बादल व्यक्तित्व का एक विप्लवी चित्र देखिए—

रे निर्बन्ध !
अन्धतम-अगम-अनर्गल-बादल !
ऐ स्वच्छन्द !—
कवि विप्लवी बादलों का आह्वान करता है
तिरती है समीर-सागर पर
अस्थिर सुख पर दुःख की छाया—

१. शिवप्रसाद श्रोत्रिय—क्रान्तदर्शी निराला, पृ० ७६
२. निराला—तुलसीदास, पृ० ५४
३. वही

जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया।
यह तेरी रणतरी
भरी आकांक्षाओं से,
घन, भेरी-गर्जन से सजग सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, आशाओं से
नवजीवन की, ऊँचा कर सिर,
ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल फिर फिर।[१]

जब विप्लवी बादल गरजता है मूसलाधार बरसता है तब सारा संसार काँप उठता है। वज्रपात से बड़े-बड़े अभिमानी अचल पर्वतों के शरीर चूर-चूर हो जाते हैं केवल छोटे पौधे प्रसन्न होते हैं क्योंकि—

विप्लव-रव से छोटे ही हैं शोभा पाते।[२]

धनीमानी बादल की गर्जन सुनकर काँप उठते हैं किन्तु जीर्णबाहु कृषक बड़ी उत्सुकता से उसका स्वागत करते हैं, क्योंकि यही बादल उनका जीवनाधार है। यह विप्लवी बादल निराला के चिर विप्लवी व्यक्तित्व का पूर्ण प्रतीक है इसमें सन्देह नहीं।

वास्तव में आनन्द की प्रतीति तभी होती है जब हम अपनी आत्मा का संसार से और संसार की आत्मा का विराट् भूमा की आत्मा से सहज एकत्व का अनुभव करते हैं।

'स्वर्ण किरण' के हिमालय-वर्णन को लीजिए—

भीम विशाल शिलाओं का वह
वह मौन हृदय में अब तक अंकित,
फेनों के जल स्तम्भों से वे
निर्झर रभस वेग से मुखरित॥[३]

कभी-कभी कवि ने अपनी भावनाओं को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करने के बदले प्रकृति को ही भावनाओं के माध्यम से व्यक्त किया है—

१. निराला—परिमल, पृ० १६०-१६५
२. वही, १६६
३. पंत—स्वर्ण किरण, पृ० १२-१३

गिरिवर के उर से उठ-उठकर
उच्चाकांक्षाओं-से तरुवर
हैं झाँक रहे नीरव नभ पर
अनिमेष, अटल, कुछ चिन्ता पर ![1]

पंत की 'परिवर्तन' नामक कविता विराट् चित्रों से भरपूर है—

अहे निष्ठुर-परिवर्तन !
तुम्हारा ही ताण्डव-नर्तन
विश्व का करुण-विवर्तन !
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान, पतन !
अहे वासुकि सहस्र-फन !
लक्ष-अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्ष:स्थल पर !
शत्-शत् फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर !
मृत्यु तुम्हारा गरल-दन्त, कंचुक-कल्पांतर,
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र कुण्डल, दिग्मंडल ![2]

विश्वमय है परिवर्तन !
अतल से उमड़ अकूल, अपार,
मेघ-से विपुलाकार,
दिशावधि में पल विविध प्रकार
अतल में मिलते तुम अविकार !
अहे अनिर्वचनीय ! रूप धर भव्य, भयंकर,
इन्द्रजाल-सा तुम अनन्त में रचते सुन्दर;
गरज-गरज, हँस-हँस, चढ़-गिर, छा-छा, भू अंबर,
करते जगती को अजस्र जीवन से उर्वर,
अखिल विश्व की आशाओं का इन्द्रचाप-वर
अहे तुम्हारी भीम-भृकुटी पर अटका निर्भर ![3]

१. पंत—रश्मिबन्ध, पृ० १६
२. पंत—पल्लव—परिवर्तन, पृ० १५०
३. पंत—पल्लव, पृ० १६२

महादेवी प्रकृति की विराटता में अखिल जगती की माँ का गरिमामय रूप देखते हुए कहती हैं—

इन स्निग्ध लटों से छा दे तन,
पुलकित अंको में भर विशाल,
झुक सस्मित शीतल चुम्बन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल;
दुलरा देना बहला देना
यह तेरा शिशु जग है उदास ![1]

वस्तुतः प्रकृति ने जिस दिव्य रूप में आधुनिक मानव को दर्शन दिया था उसकी विराटता के सामने कवि की यह श्रद्धा स्वाभाविक है। इसीलिए कुछ कवियों ने विश्व-सुन्दरी प्रकृति पर चेतनता का आरोप करके उसे 'विश्वप्रिया शक्ति' का रूप दे दिया और कुछ ने प्रकृति की अनेकरूपता में परिवर्तनशील विभिन्नता में तादात्म्य खोजने के फलस्वरूप उसके कारज पर मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण करके अपना प्रिय बना लिया। पहली प्रवृत्ति प्रसाद जी की है दूसरी महादेवी जी की।

पहले के कवियों ने प्रकृति के इस विराट् रूप को नही देखा था; उन्होने केवल कोकिल, चातक, मोर, राका, वर्षा आदि देखा था। इस तरह उन्होंने केवल प्रकृति के खण्डो को देखा था। इन खण्डो से निर्मित प्रकृति जो अखण्ड रूप है, उसे देखने की दृष्टि आधुनिक कवि को ही प्राप्त हुई है।

पंत जी ने हिन्दी कविता मे पहली बार कुछ ऐसे पर्वतीय दृश्यो का चित्रण किया जो कवियो तथा पाठकों के लिए नये थे। यह रहा शैल और जलद का खिलवाड़—

बादलों के छायामय मेल
घूमते हैं आँखो मे, फैल !
अवनि और अम्बर के वे खेल
शैल मे जलद, जलद मे शैल !
शिखर पर विचर मरुत रखवाल
वेणु में भरता था जब स्वर,
मैमनों-से मेघो के बाल
कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर ![2]

१. महादेवी—यामा—नीरजा, पृ० १४५
२. पंत—पल्लव, पृ० ६८

उसे नमस्कार करता है। वह अनेक रूपों में वन्दनीय भारतमाता की वन्दना करता है। इन सबसे ऊपर कवि की दृष्टि मानव की सुन्दर मूर्ति सँवारने की ओर लगी हुई है।

राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण गीतों में राष्ट्र की महानता का स्मरण करते हुए कवि ने प्रार्थना के स्वर में जिस उदात्त गरिमा का संचार किया है वह देखते ही बनता है—

मुकुट शुभ्र हिम तुषार, प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशायें उदार, शतमुख-शतरव-मुखरे।[१]

इस गीत का मुख्य भाव प्रार्थना है। इसकी पृष्ठभूमि सांस्कृतिक चेतना है तथा राष्ट्रीयता इसकी ध्वनि है जिसे सुनकर प्रार्थना करने वाले का अन्तःकरण दीप्त और भास्वर हो उठता है।

प्रसाद द्वारा रचित लहर में 'पेशोला की प्रतिध्वनि' और 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' राष्ट्रीयता से परिपूर्ण उदात्त कविताएँ हैं।

महाराणा प्रताप की जन्मभूमि आज भी संकट में है उसे पुनः प्रताप जैसा पुत्र चाहिए। देश से आवाज उठ रही है—

कौन लेगा भार यह ?
कौन विचलेगा नहीं ?
× ×

कहता है कौन ऊँची छाती कर, मैं हूँ—
—मैं हूँ—मेवाड़ में,
अरावली शृंग-सा समुन्नत सिर किसका ?
बोलो, कोई बोलो—अरे क्या तुम सब मृत हो ?
कौन थामता है पतवार ऐसे अंधड़ में ?[२]

भारतीय इतिहास की राष्ट्रीय भावनाओं से परिपूर्ण गौरव-गाथाओं को आधार बनाकर कवि ने इन रचनाओं की सृष्टि की है। कवि का गंभीर राष्ट्रीय उद्बोधक यह सन्देश चिरन्तन, शाश्वत एवं कालातीत है जो राष्ट्रीय होते हुए भी मानवता का विरोधी नहीं है।

१. निराला—भारती वन्दना—गीतिका, पृ० १.
२. प्रसाद—लहर, पृ० ५७

## रहस्योन्मुखता

महादेवी ने प्राचीन सीमाओं के प्रति अपना जो असन्तोष प्रकट किया है उसके साथ ही किसी उन्मुक्त तथा असीम आकाश में उड़ने की आकांक्षा प्रकट की। इसी रहस्यमयता के साथ महादेवी कहती हैं—

मैं अनन्त पथ में लिखती जो
सस्मित सपनों की बातें
उनको कभी न धो पाएँगी
अपने आँसू से रातें ॥[1]

यदि असीम से मिलने की बात अविश्वसनीय भी हो तो उन आँसुओं को कैसे झुठलाया जा सकता है जो सीमाओं में बन्द रहने के कारण बहे हैं। कल्पना के पंख पर चढ़कर क्षण-भर के लिए जो मुक्त जगत् में उड़ आने के कारण ओठों पर हँसी खेल रही है।

महादेवी के काव्य की मूल भावनाएँ मुख्यतः तीन हैं—१. अलौकिक प्रणय या रहस्यानुभूति २. करुणा ३. निर्वेद। ये तीनों भाव ही औदात्य-मूलक हैं। महादेवी का प्रणय किसी लौकिक व्यक्ति के प्रति न होकर अलौकिक ब्रह्म के प्रति है जो कि एक स्थूल वस्तु न होकर सूक्ष्म विचार रूप में ही स्थित है। उनका निर्गुण ब्रह्म ऐन्द्रियानुभूति का विषय न होकर तत्त्व बोध का ही विषय है। यह बात दूसरी है कि महादेवी ने उसे कलात्मक रूप प्रदान करते समय कहीं-कहीं उसका मानवीकरण कर लिया है पर फिर भी उनके प्रणय का आलम्बन स्थूल रूप सौन्दर्य न होकर सूक्ष्म विचार एवं विश्वास है। औदात्य का मूलाधार भी वस्तु रूप न होकर तत्त्व बोध ही होता है।

यद्यपि कवयित्री ने अपनी रहस्यानुभूति को लौकिक शब्दावली में व्यक्त करने के लिए उसे लौकिक प्रेम का ही रूप दिया है। फिर भी ऐन्द्रियकता, वासना एवं चंचल भावनाओं का उद्वेलन उसमें कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता, उनकी अनुभूति को यदि हम लौकिक प्रेम के अनुरूप भी मान लें तो उनका प्रेम अत्यन्त उदात्त सिद्ध होगा क्योंकि उसमें भोग की अभिलाषा, बलिदान एवं आत्मिक मिलन की ही भावना है। वह प्रारम्भ से अन्त तक सर्वत्र ही मन की उज्ज्वल, उदात्त एवं पवित्र भावनाओं पर ही आधारित है। सर्वप्रथम उनके प्रथम दर्शन की घटना का चित्रण देखिए—

१. महादेवी वर्मा—नीहार—भाषा, पृ० ५

झटक जाता था पागल वात
धूलि में तुहिन कणो के हार,
सिखाने जीवन का सगीत
तभी तुम आये थे इस पार।
भूलती थी मैं सीखे राग
बिछलते थे कर बारम्बार,
तुम्हें तब आता था करुणेश !
उन्ही मेरी भूलो पर प्यार ॥[१]

यहाँ प्रियतम का आगमन जिन परिस्थितियो मे दिखाया गया है वे वासनापूर्ण एवं कामोत्तेजक नही है अपितु सहानुभूतिजनक हैं। फिर आराध्य का व्यवहार भी कितना उच्च एवं महान् है—कवयित्री के आराध्य इतने उदार, शान्त एवं करुण थे कि उनकी प्रत्येक भूल पर उनके मन मे और अधिक प्यार उमड आता था।

वस्तुत. प्रेयसी और प्रियतम का यह प्रारम्भिक सम्पर्क एवं व्यवहार सामान्य व्यवहार के स्तर से बहुत ऊँचा उठा हुआ है। कवयित्री का प्रियतम सामान्य व्यक्ति न होकर एक ऐसी महान् सत्ता है जिसके प्रत्येक क्रिया-कलाप मे महानता है, उदात्तता है। इसीलिए प्रेयसी युग-युगों तक उसके निर्देशानुसार साधना करने के अनन्तर अपनी असमर्थता एवं असफलता इन शब्दो मे स्वीकार कर लेती है—

गए तब से कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण !
नही पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा-सा मनमोहन गान।
× × ×
नही अब गाया जाता देव !
थकी अँगुली, है ढीले तार,
विश्व वीणा मे अपनी आज,
मिला लो यह अस्फुट झंकार ![२]

यहा युगों-युगो तक की गयी साधना की असफलता को स्वीकार किया गया है फिर भी साधिका के मन मे किसी प्रकार का क्षोभ, रोष या शोक नही है।

१ महादेवी वर्मा—नीहार, पृ० १
२. वही, पृ० १

वह अपनी असमर्थता स्वीकार करती रहती है पर इसके लिए कोई ग्लानि या पश्चाताप नहीं है, वह अपनी विफल कामना के लिए उत्तरदायी आराध्य पर न कोई आक्षेप या व्यंग्य करती है न ही उसे कोई उपालम्भ देती है अपितु अत्यन्त कोमल एवं विनम्र स्वर में अपना लेने का अनुरोध करती हैं। वस्तुतः यह सारा प्रसंग अत्यन्त उदात्त एवं पवित्र भावना पर आश्रित है इसीलिए इसकी गम्भीरता कहीं भी चंचलता, चटुलता एवं तुच्छता से विह्वल नहीं हो पायी। इसमें न केवल आराध्य के प्रणय युक्त करुणापूर्ण व्यवहार में अपितु साधिका की दीर्घ साधना, सहिष्णुता, दैन्यता एवं आत्म-समर्पण की भावना में ऐसी विशिष्टता, उच्चता एवं उदात्तता दृष्टिगोचर होती है जो सामान्य प्रेमानुभूतियों में अप्राप्य है। वस्तुतः उनका प्रणय उदात्त प्रेम है जो वासना और कामुकता से सर्वथा शून्य एवं वेदना, त्याग एवं आत्म-बलिदान के उच्च आदर्शों से अनुप्राणित व आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख है। इसी प्रकार के पवित्र प्रणय को भारतीय आचार्यों ने उज्ज्वल शृंगार एव उज्ज्वल रस की संज्ञा दी है जो पाश्चात्य दृष्टि से औदात्य का पर्याय कहा जा सकता है।

प्रसाद का आत्म प्रसार एक अतीन्द्रिय आनन्दानुभूति के रूप में अभिव्यक्ति पाता है। लेकिन कामायनी में छायावादी युग की प्रायः सभी रहस्य भावनाओं का प्रतिनिधित्व हो गया है। आरम्भ में प्राकृतिक सुषमा से अभिभूत होकर मनु के मन में भी जिज्ञासा उत्पन्न होती है। वे मन ही मन प्रश्न करते हैं—

> तृण, वीरुध लहलहे हो रहे
> किसके रस से सिंचे हुए ?[१]

लेकिन तुरन्त ही उस पर वे 'विश्वसुन्दरी' का आरोप कर देते हैं। वह विराट् सत्ता धीरे-धीरे 'इन्द्रजाल जननी' रूप में रूपान्तरित हो जाती है। तारा दीपक लेकर कामना सिन्धु तट पर आ जाती है।

अन्यत्र मनु के मन में 'काम' का उदय भी बिल्कुल रहस्यात्मक शक्ति के रूप में होता है। काम के प्रभाव से उन्हें सम्पूर्ण सृष्टि अणु-अणु परमाणु के विराट् नृत्योत्सव के रूप में दिखाई पड़ती है और इन सबके अन्त में निराला की तरह प्रसाद को भी समस्याओं का वास्तविक रूप तथा उनका समाधान शिव के विराट् रूप में मिलता है। श्रद्धा मनु को अपने अलौकिक प्रभाव से आकाश में तीन तारों की तरह त्रिपुर के दर्शन कराती है, जो वस्तुतः ज्ञान, इच्छा, क्रिया के प्रतीक हैं। शक्ति रूपा श्रद्धा अपनी स्मिति रेखा से उन तीनों

१. प्रसाद—कामायनी, पृ० ३४

को एक मे मिला देती है और नटराज का ताण्डव नृत्य होने लगता है। मनु तन्मय हो जाते हैं।

लेकिन प्रसाद की जिज्ञासा अतीन्द्रियता और विराटता में पुरानी रूढ़ियो के प्रति न तो वैसा विद्रोह है न आत्मविस्तार की वैसी तीव्र आकांक्षा है।

छायावादी कवि अपने इस आत्मविकास के बारे मे अधिक स्पष्ट नहीं थे इसलिए जहा वे अपने असीम अज्ञात और विराट् को प्रियतम के रूप मे व्यक्त करते है वहां उस पर वे एक आवरण डाल देते हैं—

> शशि-मुख पर घूंघट डाले
> अंचल मे दीप छिपाए
> जीवन की गोधूली मे
> कौतूहल-से तुम आये ॥[1]

निरालाजी की प्रवृत्ति वेदान्त की ओर होने से उनकी प्रारम्भिक रचनाओ मे दार्शनिक गूढता का सन्निवेश रहा है। इस कविता मे निराला ने ब्रह्म की सत्ता को सत्य मानते हुए अपने अहं को उसी में लीन करके देखा है। स्त्रीत्व के रूप मे नहीं वरन् उस शक्ति का एक लघु रूप मान कर। अग्नि के स्फुलिंग की भाति अहं को उस विराट् का एक अंश मानना ही अभिप्रेत है। भाववस्तु के साथ कविता मे काव्यगुण भी इतना उच्च कोटि का है कि कविता दार्शनिक परिवेश मे भी पाठक के मन को पूर्णता के साथ पकडने मे समर्थ होती है।

> तुम तुग-हिमालय-शृंग और मैं चंचल-गति सुर-सरिता।
> तुम विमल हृदय उच्छ्वास और मैं कान्त-कामिनी-कविता।
> तुम प्रेम और मै शान्ति, तुम सुरापान-घन-अंधकार,
> मैं हूं मतवाली भ्रान्ति ॥[2]

परिमल संग्रह मे आशा और जागरण की भावना से परिपूर्ण अनेक कविताओ द्वारा कवि ने यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि ब्रह्म की सत्ता अखण्ड और सत्य होने पर भी यह जीवन नैराश्य या कुण्ठा के लिए नहीं मिला है। ब्रह्म चिन्तन निरालाजी का प्रिय विषय रहा है।

१. प्रसाद—आँसू, पृ० १६
२. निराला—परिमल, पृ० ८०

निराला की रौद्र और विराट् रहस्य भावना के विपरीत पंतजी की रहस्य भावना अज्ञात की लालसा के रूप में व्यक्त हुई है। निराला के आत्म-विस्तार मे व्यक्तित्व की विराटता की आकांक्षा थी तो पंत में ज्ञान के विस्तार के रूप में। पंतजी सीमित ज्ञान की सीमा को तोड कर प्रकृति और जगत् के प्रति जिज्ञासु की तरह देखते हैं। पतजी का बाल-मन हर चीज से सवाल पूछता है—

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि,
तूने कैसे पहचाना ॥[1]

फिर वह जिज्ञासु मन फैले हुए खेतों को देखता है कि उनके पार भी कुछ होगा, जो होगा वह परियो के संसार की तरह मोहक होगा—

दूर, उन खेतों के उस पार,
जहाँ तक गई नील-झंकार,
छिपा छाया-वन मे सुकुमार,
स्वर्ग की परियों का संसार ॥[2]

पंत के शब्दो में "जिस प्रकार प्रकृति ने मेरे किशोर हृदय को अपने सौंदर्य से मोहित किया है उसी प्रकार पर्वत प्रदेश की निर्वाक् गरिमा तथा हिमराशि की स्वच्छ शुभ्र चेतना ने मेरे मन को आश्चर्य तथा भय से अभिभूत कर उसमे अपने रहस्यमय मौन स्वर, संगीत की स्वर लिपि भी अंकित की है। पर्वत श्रेणियों का वह मौन सदेश मेरी प्रारम्भिक रचनाओ में विराट् भावनाओं तथा उदात्त स्वरो मे अवश्य नही अभिव्यक्त हो सका है किन्तु मेरे रूप-चित्रों के भीतर से एक प्रकार का अरूप सौन्दर्य यत्र-तत्र अवश्य छलकता रहता है।"[3]

छायावादी काव्य में महान् धारणाओ की अभिव्यक्ति क्षमता-प्रबन्ध और मुक्तक रचनाओं में विषय के चयन और उसके निर्वाह में विभिन्न रूपों मे व्यक्त हुई है।

१. पत—रश्मिबंध, पृ० ३४
२. पंत—गुंजन—पृ० ७४
३. शचीरानी गुर्टू—सुमित्रानन्दन पंत, पृ०३-४

## वस्तु-चयन

### कामायनी

वस्तु-विन्यास की दृष्टि से कामायनी का प्रथम सर्ग विराट् एवं उज्ज्वल आशा की सूचना देता है। 'हिमगिरि का उत्तुंग शिखर, चारों ओर सर्वग्रासी प्रवाह एवं गीले नयनों वाला एक पुरुष' यहां से कथा का सूत्र उठाया गया है। स्तब्ध वातावरण में उस तरुण तपस्वी के समान लम्बे दो-चार देवदारु के वृक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। तपस्वी चिन्तित है परन्तु उसका रूप महान् संभावना गर्भित गरिमा लिए हुए है—

> अवयव की दृढ़ मांस-पेशियां
>
> \+ \+
>
> बहता भीतर मधुमय स्रोत ॥[1]

इन पंक्तियों में चित्रित व्यक्ति प्रलय से त्रस्त होकर भी नयी सभ्यता का आदि पुरुष हो सकने की सारी क्षमताएं लिए हुए है। पाठक महान् समारम्भ की प्रतीक्षा में आश्वस्त और उत्सुक हो उठता है। आदि पुरुष मनु को बीती घटनाएँ याद आती हैं। देवसृष्टि का उन्मत्त निर्बाध विलास और फलस्वरूप महाविनाश का ही प्रलय, हलाहल नीर की भीषण वर्षा मनु को अभिभूत कर लेती है। कुछ देर के लिए मनु को मौन ! नाश ! विध्वंस ! अंधेरा ही सत्य लगते हैं। तदनन्तर भयंकर प्रलय की कालरात्रि पराजित होती है। प्रकृति का विवर्ण एवं त्रस्त मुख सुनहले तीर बरसाती ऊषा के आलोक में मुस्करा उठता है। इस तरह काव्य की मूल-कल्पना—अदम्य आशावादिता—संकेतित होती है। यह धारणा तब और भी दृढ़ हो जाती है जब हम मनु पर इसकी प्रतिक्रिया देखते हैं—

> उठे स्वस्थ मनु ज्यों उठता है
> क्षितिज बीच अरुणोदय कान्त;
> लगे देखने लुब्ध नयन से
> प्रकृति-विभूति मनोहर, शान्त।
> पाकयज्ञ करना निश्चित कर
> लगे शालियों को चुनने ॥[2]

१. प्रसाद—कामायनी—चिन्ता सर्ग, पृ० १०

२. वही—आशा सर्ग, पृ० ३९-४०

इसके पश्चात् वसन्त के अग्रदूत के समान, विरस पतझड़ में नवजीवन का सन्देश लिए श्रद्धा का आगमन होता है। वह मनु को वैराग्य से निकलने को प्रेरित करती है। इसी सन्दर्भ मे काम एवं कर्म की महत्ता से सम्बद्ध वे पंक्तियां हैं जो मध्यकालीन निवृत्तिपरकता, विलासिता एव द्विवेदीयुगीन रस विमुखता के बाद एक नयी स्फूर्ति, स्वस्थ दृष्टि एवं उदात्त बोध को व्यंजित करती है।

(क) काम मंगल से मंडित श्रेय।
(ख) तप नहीं केवल जीवन सत्य।
(ग) शक्तिशाली हो विजयी बनो।
(घ) शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त।[1]

काम सर्ग में इसी पक्ष की सृष्टि की गयी है। वासना एवं लज्जा सर्ग मे प्रेम सौन्दर्य, उल्लास एवं लज्जा आदि भावों का मार्मिक आवेग भरा चित्रण है। पशु मे प्यार करती एवं प्यार पाती श्रद्धा का परित्याग कर मनु चले जाते हैं। थोडी देर के लिए इडा का उज्ज्वल प्रकाश सूर्यास्त के पूर्व की मनोरम आभा से परिपूर्ण-सा दिखाई देता है। परन्तु कुछ ही देर में गहन अधकार घेरने लगता है।[2]

औदात्य की दृष्टि से कामायनीकार कर्म सर्ग से ही पथ भूल गया है। जिस कर्म की महिमा की (काव्य) दृष्टि से कहीं-कहीं शिथिल किन्तु चिन्तक की दृष्टि से उदात्त व्याख्यान कवि ने श्रद्धा के मुख से इससे पूर्व करवाया था वह कर्म कामायनी मे अपेक्षित है। चिन्तन के स्तर का उदात्त कर्म चित्रण के स्वर पर नगण्य एवं अपकर्षक हो गया है। उदात्त कर्म के स्थान पर कर्म के तामसिक रूप का चित्रण किया गया है जिसमें ईर्ष्या, स्वार्थ हिंसा निर्बाध, विलास भावना प्रधान है। देवसृष्टि के उन्मुक्त निर्बाध विलास का परिणाम, स्वयं मनु देख चुके हैं। कर्म मात्र से विरत होना चाहते रहे हैं परन्तु प्रसाद ने बुद्धि, यान्त्रिकता एवं भौतिकता को अतिवादी रूप का दुष्परिणाम दिखाने की आकाक्षा में मनु को पुनः उसी दोष मे ग्रसित कर दिया गया है। निर्बाधित विलास मे देवसृष्टि विध्वंस हुई है और अनधिकृत विलासेच्छा एवं बलात्कार के प्रमाण से मनु स्वयं मृतप्राय हो जाते हैं। प्रारम्भ मे श्रद्धा ने देवध्वंस के अवशेष मनु को कर्म की मंगल मूलता का सन्देश दिया था और अब वह उसी चेतना क्षेत्र में ले जाती है परन्तु वस्तु-विन्यास या कथा-विकास जो चिन्ता सर्ग से लज्जा सर्ग तक समभूमि पर सहज भाव से विकसित होता है कर्म सर्ग

१ प्रसाद—कामायनी—श्रद्धा सर्ग, पृ० ४८, ५०, ५२, ५३
२. वाजपेयी—कामायनी—आधुनिक साहित्य, पृ० ९६

है। तुलसीदास के अनाहूत ससुराल पहुंच जाने पर रत्नावली द्वारा उसकी प्रताड़ना एवं अवमानना तुलसीदास के जीवन का निवर्तन बिन्दु है जहां रत्नावली अपकर्ष की ओर ले जाने वाली वामा न रहकर अनल प्रतिमा में प्रवर्तित हो जाती है। तुलसीदास मे प्रबल संस्कार जाग उठते हैं। उन्हे ऐसे नवीन भावपूर्ण उत्कर्षक शब्द सुनाई देने लगते हैं जिनमे आलोक और उज्ज्वलता की अभिव्यक्ति है। फलस्वरूप ऋषिगण हर्षित होते हैं जब अपने दायित्व के प्रति प्रबुद्ध तुलसीदास चल मन्द चाल बाहर आते हैं तो हृदय में बसी वही चिर-परिचित रत्नावली की मूर्ति 'विश्वाश्रम महिमा घर' बन चुकी होती है। और बाहर प्राची दिगन्त मे 'उर पुष्कल रविरेखा' का उदय हो रहा होता है। इस प्रकार छोटे-से खण्डकाव्य मे सम्भावना सम्पन्न व्यक्ति के देशकाल के शर से जागरण एवं उत्कर्षण का विवरण है।

## राम की शक्ति पूजा

एक आख्यानक रचना है जिसका प्रमुख आधार शिवमहिम्न स्तोत्र में प्राप्त संकेत के अतिरिक्त देवी भागवत और उससे भी अधिक बंगला रचना कृतिवासीय रामायण बताया जाता है।[1] यहां पौराणिक आख्यान के माध्यम से कठिनतम संकट में भी मानव-जीवन के उदात्त पक्ष मे और उसकी अज्ञेयता मे आस्था व्यक्त की है। राम यहां द्वन्द्वातीत लोकातिशायी पूर्ण पुरुष नही हैं अपितु सामान्य पुरुष की आशा-निराशा संकट एव संघर्ष आदि का प्रतिनिधित्व करते हैं। रचना की मूल समस्या सत् और असत् के संघर्ष में सत् की निराश्रितता का संकट है जो मानवीय मूल्यो में विश्वास करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक चुनौती है।

महनीयता की दृष्टि से 'राम की शक्ति पूजा' का स्थान निराला काव्य मे ही नहीं, सम्पूर्ण हिन्दी काव्य में अन्यतम है।[2] यह ठीक है कि इसमे महाकाव्य का विस्तार नही है परन्तु वस्तु की महत्ता विस्तार मे नही होती अपितु गहराई एव व्यापकता में होती है। विस्तार के अतिरिक्त गुण है। अतः विस्तार के अभाव में भी 'राम की शक्ति पूजा' में महाकाव्य की गरिमा है।

१. निराला—तुलसीदास, पृ० ५३
२. जयरामन्—राम की शक्ति पूजा का आधार, पृ० १६

## परिमल

परिमल में 'यमुना के प्रति', 'प्रिया के प्रति', 'तरंगों के प्रति', 'जलद के प्रति' और द्वितीय खण्ड की 'प्रपात' कविताएं हैं जो प्रेरणात्मक और उदात्त कही जा सकती हैं। इनका एक निश्चित लक्ष्य होता है। ये किसी उदात्त वस्तु से ही संबंधित होते हैं। 'यमुना के प्रति' निराला की उन कविताओं में से है जिनमें वे बुद्धि और भावना का योग करने में समर्थ हुए हैं और कविताएं विशेष उज्ज्वल और निखरी हुई हैं। इसमें बुद्धि तत्त्व भावना के साथ सन्निविष्ट होकर अधिकांश में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व छोड़कर मिल गया है जिससे तल्लीन वातावरण बनकर काव्य वैभव का विशेष विकास हो सका है।[1] जहां यमुना को देखकर बिहारी की ब्रजनायिकाओं की वासनालिप्त क्रियाएं याद आई थी और जो यमुना रीतिकाल में घोर वासनात्मकता में भी लांछित हो गयी थी वही निराला में आकर एक उदात्त भावस्तर की आधारवस्तु बन जाती है। वह अतीत के वैभव का प्रतीक बनती है सम्भवतः इसीलिए इसे कृष्ण काव्य की एक नई उद्भावना भी कहा गया है।[2]

एक रहस्यात्मक संकेत के साथ 'तरंगों के प्रति'[3] निराला की प्रकृति की उत्कृष्ट कविता है। तरंगों के आवर्त्त-प्रवर्त्त के चित्रों में जहां लघु चित्रकला है वहीं अनन्त, असीम और विराट् व्यापकता भी। 'उसकी स्मृति' में भावनात्मक आवेग के साथ बीती प्रेम-क्रीड़ा का उदात्त भाव चित्र है, कल्पना *का मुक्त प्रवाह है। प्रेम और सौन्दर्य सूक्ष्म बनते गए हैं। वे आत्मिक अवयव* हो गए हैं। 'धारा'[4] में भी उद्दाम यौवन का स्वतन्त्र प्रवाह है। मुक्त प्राणों के स्वर इस कविता में भी है और प्रच्छन्न रूप से यह धारा क्रांति की धारा भी हो सकती है। वह जीवन की प्रबल उमंग है। इसी खंड में प्रकृति के तीन सुन्दर और उदात्त चित्र आए हैं।

परिमल में जागरण और क्रांति का संदेश तथा अन्याय के प्रतिकार का पाठ भी पढ़ाया गया है। कवि कहता है—

> एक बार बस और नाच तू श्यामा!
> *सामान सभी तैयार,*
> कितने ही है असुर, चाहिए कितने तुझको हार ? ॥[5]

१ *आचार्य वाजपेयी—हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी, पृ० १३४*
२. गंगाप्रसाद पाण्डेय—महाप्राण निराला, पृ० १६४
३. निराला—परिमल—तरंगों के प्रति, पृ० ७६
४. *वही, धारा के प्रति, पृ० १३४*
५. निराला—परिमल—पृ० १३७

**व्यापार-चयन**

निराला द्वारा रचित 'राम की शक्ति पूजा' एक सशक्त कविता है। राम की शक्ति पूजा कवित्व की उत्कृष्टता एवं महाकाव्य की उदात्तता, कल्पना की सजीवता एव प्रतीक विधान की उत्तमता, ध्वनि-व्यंजना की सूक्ष्मता एवं भावों की प्रबलता से ओत-प्रोत एक विराट् चित्र है। इसमे अन्तर्द्वन्द्व का विश्लेषणात्मक रूप-रंग, राम के चिन्तन मे घेर-घेरकर कवि ने निरूपित किया है। राम के लीला सहचर दिव्य भव्यधर महावीर हनुमान की विराटता का प्रसंग इस कथा मे एक दार्शनिक पहलू है। जहां विद्या के आश्रय और मातृशक्ति के प्रबोध मे विराटता विनत होती है। 'राजीव नयन राम का पुनश्चरण पूर्ण करना' शक्ति प्राप्त करना और रावण पर विजय कथा की परिणति है। 'राम की शक्ति पूजा' अपने में एक पूर्ण महाकाव्य है।[1]

'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' मे निराला जी ने मानस का ऊर्ध्वगमन प्रदर्शित किया है। यह आध्यात्मिकता का सहज साधन है। जब तक मन ऊपर नही उठता, तब तक सफलता प्राप्त नही होती। ए० सी० ब्रैडले के शब्दों मे "काव्य विचार या जीवन के दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति नही है यह उनका अन्वेषण या निर्माण है।" निराला का काव्य उनके विराट् हृदय की अनुभूतियों का सहज स्फुरण है। राम के समक्ष यह चुनौती तब ऐसे आहत और स्तब्ध कर देने वाले संकट के रूप में, उपस्थित होती है। जब रावण से संघर्ष करते हुए वे देखते हैं—

अन्याय जिधर है उधर शक्ति[2]

सारी रचना इसी स्थिति को जूझने, चुनौती स्वीकार करने और संकट से उबरने के उपाय की खोज से सम्बद्ध है।

प्रलयंकर युद्ध के भीषण आतंक के दृश्य दर्शन के साथ इस रचना का आरंभ हुआ है। निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा राम-रावण के युद्ध की चरम उग्रता का विराट् दृश्य देखा जा सकता है—

प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह, भेद-कौशल-समूह,
राक्षस-विरुद्ध-प्रत्यूह, क्रुद्ध कपि-विषम-हूह,
विच्छुरितवह्नि-राजीवनयन हत-लक्ष्य-बाण,
लोहित लोचन-रावण-मदमोचन-महीयान,

१. निराला—स्मृति ग्रन्थ—पृ० ६-१०
२. निराला—अपरा, पृ० ३६

राघव-लाघव-रावण-वारण-गत युग्म-प्रहर,
उद्धत लंकापति-मर्दित कपि-दल-बल-विस्तर ।[1]

फिर रावण की भीमामूर्ति नभ को आच्छादित किए हुए सम्मुख आ खड़ी होती है। खल-खल करता अट्टहास सुनाई देता है। राम स्मृति से वास्तविकता में और मधुर अतीत से वर्तमान की सासद स्थिति में आ गिरते हैं। उनकी आँखों में आंसू भर आते हैं—

फिर सुना-हँस रहा अट्टहास रावण खल-खल,
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता-दल ।[2]

यही निराला के आस्तिक हृदय ने महावीर हनुमान के 'अतिलौकिक शक्ति खेल' सागर अपार का विस्मित करने वाला चित्रण किया है—

करने को ग्रस्त, समस्त व्योम
कपि बढ़ा अटल ।[3]

राम की निराशा इतनी घनी है कि उस पर विभीषण के ओजस्वी शब्दों का कुछ प्रभाव नही पडता—

मित्रवर विजय होगी न समर,
यह नही रहा नर-वानर का राक्षस से रण,
उतरी पा महाशक्ति, रावण से आमन्त्रण,
अन्याय जिधर, है उधर शक्ति ।[4]

रेखांकित पंक्तियो मे राम की निराशा या मानवीय मूल्यों में विश्वास करने वाले व्यक्ति के संकट की द्योतक पंक्ति है ।

निराला द्वारा रचित तुलसीदास मे भी इस प्रकार के अनेक विराट् चित्र दृष्टिगत होते हैं । अतृप्ति जन्य भावोन्माद की तन्मयता में तुलसीदास ससुराल पहुच जाते है । वहा पहुचकर महाकालस्वरूपिणी नारी के ज्योतिः साक्षात्कार से उनके हृदय की आखें खुल जाती हैं । नारी शक्ति के अभय ओज की दिव्य झांकी है जिससे उनके प्रसुप्त अन्तःकरण मे प्रबुद्धता की ज्योति जग जाती है । पति को समाज घातक, भावोन्मादक, लोकादर्श ध्वंसक जान

१. निराला—अपरा, पृ० ३३
२. वही, पृ० ३६
३. वही, पृ० ३७
४. वही, पृ० ३६

कर उसे दूर करने के लिए रत्नावली का स्वाभिमान उसमें महाकाली का तेज प्रवुद्ध कर देता है उस समय उसकी झाकी महाकाली के रूप में ही न देकर, विराट् प्रतिभा के महामानव कवि ने महालक्ष्मी और महासरस्वती की ज्योतिस्सत्ता समन्वित रूप मे दी है।

अचपल ध्वनि की चमकी चपला,
बल की महिमा बोली अबला,
जागी जल पर कमला, अमला मति डोली—
"धिक् आये तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म, धूत,
राम के नहीं, काम के सूत कहलाये !"[1]

मानो जल के ऊपर लक्ष्मी की मधुरता अथवा अमला सरस्वती प्रवुद्ध हो गयी। सत्य की इस अकातर ध्वनि को सुनकर युग पुरुष के गौरव की आँखें खुल गयी। जैसे पत्नी के रूप मे उन्हें साक्षात् सरस्वती का दर्शन हुआ हो।

## चरित्रांकन

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से देखें तो कामायनी चरित्र-प्रधान रचना ही नहीं है इसमे मनोवैज्ञानिक मानव-विकास एवं दर्शन के संदर्भ मे मानव-मन एवं मानवचेतना के चित्रण का प्राधान्य है। इसलिए चरित्र भी वृत्तियो एव दृष्टियों की इकाइया हैं। वे व्यक्तित्रम और प्रतीक अधिक हैं। प्रमुख पात्र तीन हैं—मनु, श्रद्धा और इड़ा। एक दृष्टि से कामायनी मे एक ही पात्र मनु प्रधान पात्र है। श्रद्धा और इडा उसी के दो पक्ष हैं।[2]

मनु को एक ओर मनुष्यता के मनोवैज्ञानिक इतिहास का प्रतीक बनाया गया है दूसरी ओर अनगढ मानव चेतना के विकास का। कथा के प्रारम्भ में वे भारतीय इतिहास का आदिपुरुष मनु है। मध्यभाग मे प्रजापति मनु और अन्त में साधक सिद्ध या महर्षि मनु। निर्वेद सर्ग तक वह मानव मात्र का प्रतिनिधि है। उसके बाद व्यक्ति का प्रतिनिधि बन जाता है। इसलिए मानव को इड़ा के साहचर्य मे परिजन, पुरजन समेत आनन्द प्राप्ति के लिए अलग यात्रा करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त मनु, श्रद्धा और इडा नारियों के सन्दर्भ मे पुरुष का प्रतिनिधित्व भी करता है। और वर्तमान संघर्षात्मक युग के मानव का भी

१. निराला—तुलसीदास, पृ० ५३
२. प्रसाद—कामायनी, आमुख, पृ० ७

जो जीवन की विषमताओं का शिकार है और अहंकार, ईर्ष्या, अतृप्ति आदि विकारों में पड़कर अनेक दिशाओं मे दौड़ता है पर कहीं भी शांति नही पाता। प्रथम तीन सर्गों मे चित्रित उदात्त संभावना गर्भित मनु का व्यक्तित्व परवर्ती सर्गों मे विषम वृत्तियों का विडम्बना भरा पुंज बनकर रह जाता है। कामायनी के वस्तु-विन्यास मे पायी जाने वाली विषमता का वाहक मनु ही है। अंतिम सर्गों मे श्रद्धा के पथ-निर्देशन मे उसे जीवन की चरितार्थता भी मिलती है। परन्तु अपने चरित्र गुणों से अर्जित या सहज विकास का परिणाम नही है। 'महाचिति' की अकारण अनुकम्पा का ही फल है।

श्रद्धा इस काव्य का उज्ज्वल चरित्र है। मनु की सारी विषमताओं एवं प्रश्नानुकूलता का समरस समाधान कवि ने श्रद्धा द्वारा ही करवाया है। श्रद्धा या कामायनी मानव-मन की उदात्त वृत्तियों दया, सहनशीलता, ममता, विश्वास, समर्पण, मधुरिमा, क्षमा और मंगल कामना आदि का प्रतिनिधित्व करती है। कामायनी के उत्तरार्द्ध में वह अपरिमेय उदारता भरी मातृमूर्ति कही जा सकती है। नवजागरण काल की स्वच्छन्दता एवं स्वच्छता के फलस्वरूप नारी प्रतिमा मे औदार्य एवं सौन्दर्य की जो भी कल्पना की जा सकती थी श्रद्धा उसका प्रतिनिधित्व करती है पर विडम्बना यह है कि मनु की तरह श्रद्धायें भी तीन हैं—प्रथम—स्वस्थ प्रवृत्तिपरक जीवन दृष्टि का प्रतीक है। द्वितीय कोमलता मे बल खाने वाली छुई-मुई, छायावादी नारी है। तृतीय सर्वमंगल आध्यात्म पथ-प्रदर्शिका और स्थिति मात्र से सभी प्रकार की विषमताओं का परिहार करने वाली पराशक्ति का प्रतीक है। श्रद्धा के प्रथम दो रूप लौकिक धरातल पर क्रमशः दीप्ति एवं मधुरिमा मण्डित चित्रित किये गए हैं जिनमे सम्बन्ध सूत्र बना रहता है परन्तु अन्तिम रूप अन्तलौकिक स्तर का है। जिसका श्रद्धा के प्रथम दो रूपों से क्षीण सम्बन्ध ही कहा जा सकता है। अन्तिम सर्गों की श्रद्धा सारस्वत प्रदेश की दुर्घटना के लिए मनु की अपेक्षा इडा को दोष देती है। वस्तुतः अन्तिम सर्गों की श्रद्धा सामान्य मानवी न रहकर "कामेश्वर की पूर्णकला" बन गयी है। फलस्वरूप इसकी स्थिति मात्र से त्रिपुर का वैषम्य समाप्त हो जाता है। शून्य रागमय हो जाता है। अगजग मुखरित हो उठता है।"[1]

इसी प्रकार रत्नावली तुलसीदास के आत्मदर्शन की प्रेरणा बनती है। यह नारी समग्र सृष्टि का रहस्य है। तुलसीदास का कवि सृष्टि को नारीमय मानकर चला है। नारी ही सन्मार्ग पर लाने वाली है। अपने प्रेरक रूप में नारी के इस रूप पर सरस्वती और भारती का आरोप हुआ है। रत्नावली का यह रूप कामायनी की श्रद्धा का है। "साम्य का आधार स्थूल चारित्रिक नहीं

1 प्रसाद—कामायनी—आनन्द सर्ग, पृ० २१३

अपितु मूलभाव है। मनु के जीवन का केन्द्र कामायनी से हटकर भ्रम और संघर्ष में पड़ता है। अन्ततः श्रद्धा ही उसकी प्रणत शान्ति और आध्यात्मिक उपलब्धि का कारण बनती है। वही श्रद्धा मनु को समरसता और आनन्द की ओर ले चलती है। रत्नावली में भी यही भाव मूल है। तुलसीदास के आत्मदर्शन और प्रेरणा का केन्द्र भी रत्नावली है। उसी के कारण कवि में द्वैत, बंधन का अन्त होता है। वह भौतिक सीमाएं छोड़कर आत्मिक शक्ति को जागृत करता है।"[1]

"राम की शक्ति पूजा" में कवि ने जाम्बवान के मुख से शक्ति की आराधना की समस्या का निराकरण कहलवाया है—

विचलित होने का नहीं देखता मैं कारण,
है पुरुषसिंह, तुम भी यह शक्ति करो धारण।।
आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर,
रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर सका त्रस्त,
तो निश्चय तुम हो सिद्ध, करोगे उसे ध्वस्त।।[2]

यही व्यक्तित्व के औदात्य की परख होती है। राम के समक्ष यह जटिलतम स्थिति तब याद आती है जब अन्तिम जप से पूर्व पूजा के नीलकमल के लिए उठा हुआ राम का हाथ शून्य में भटकता रह जाता है। राम के नेत्र छलछला आते हैं। ग्लानि से उनके मुख से यह पंक्तियां निकल आती हैं—

धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।।[3]

परन्तु राम का औदात्य कठिनतम संकट की घड़ी में भी अपहृत नहीं होता,

वह एक और मन रहा राम का जो न थका,
जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय,
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय,
बुद्धि के दुर्ग पहुंचा विद्युत-गति हतचेतन
राम में जगी स्मृति हुए सजग पा भाव प्रमन।
+ + +
पूरा करता हूं देकर मात एक नयन।[4]

१. वाजपेयी—निराला का भाव और व्यक्तित्व, पृ० १६६
२. निराला—राम की शक्ति पूजा, पृ० ४१
३. वही, पृ० ४४
४. वही, पृ० ४४

सम्पंण की उत्कटता और दृढता के भाव से ब्रह्मांड काप उठता है। महाशक्ति प्रसन्न हो राम के वदन मे लीन हो जाती है। डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दो में "राम के संघर्ष का चित्र जितना प्रभावशाली है उतना उनकी विजय का नही।"[1]

यहां औदात्य असत् के विकटतम प्रतीक से जूझने की क्षमता के अर्जन *तथा तदर्थ इष्ट के प्रति निःशेष समर्पण की उत्कटता मे व्यजित हुआ है।*

## भाव योजना

छायावादी कविता मे रतिभाव का चित्रण किया गया है। प्रेम का आदर्शवादी स्वरूप पहले द्विवेदी युग की कविता मे ही दिखलाई पडा क्योकि रीतिकाल की ऐन्द्रिक प्रेम भावना की प्रतिक्रिया के कारण उसमे स्वस्थ स्वाभाविक लौकिक प्रेम की शृंगारी भावना का भी तिरस्कार किया गया। अत: उसी दमित रतिभावना का उदात्तीकरण छायावादी कविता मे हुआ। द्विवेदी युग के प्रबन्ध काव्यो मिलन पथिक, प्रिय प्रवास मे भी यह उदात्त प्रेम दिखलाई पडता है। इस युग मे प्रसाद के प्रेम पथिक और गुप्त जी के साकेत में अधिक उभर कर आया है। छायावादी कवियों ने इसे शरीर के नही, आत्मा के गुण के रूप मे स्वीकार किया—

अनिल-सा लोक लोक मे,
हर्ष मे और शोक मे,।
कहां नही है स्नेह ? सास सा सबके उर मे ॥[2]

उन्होंने प्रेम को सर्व व्याप्त और जीवन के लिए सबसे आवश्यक वस्तु माना। इस उदात्तीकरण के कारण व्यक्तिगत प्रेम विश्वप्रेम और प्रकृतिप्रेम के रूप मे भी बदल गया और प्रिय की छवि विश्व प्रकृति के रूप मे दिखलाई पड़ने लगी।

प्रिये, कलि-कुसुम-मे आज
मधुरिमा मधु, सुपमा सुविकास।
तुम्हारी रोम-रोम छवि-व्याज
छा गया मधुवन में मधुमास ॥[3]

१. डॉ० रामविलास शर्मा—महाप्राण निराला
२. पंत—पल्लव—उच्छ्वास, पृ० ४६
३. पत—गुंजन, पृ० ३८

प्रिय के सम्मुख रहने पर सारा संसार आनन्दमय प्रतीत होता है। चारों ओर जिस प्रसन्नता और सौन्दर्य के दर्शन हो रहे हैं वह प्रिय के पास रहने और उसकी सौन्दर्य राशि के अणु-अणु में व्याप्त होने के कारण है—

मिल गए प्रियतम हमारे मिल गए
यह अलस जीवन सफल अब हो गया
कौन कहता है जगत है दुःखमय
यह सरस संसार सुख का सिन्धु है

प्रणय की भांति महादेवी की करुणा और निर्वेद भावना भी औदात्य की भावभूमि पर अवस्थित है। एक मुरझाए फूल को देखकर उनके हृदय में करुणा का प्रवाह उमड़ पड़ता है—

कर दिया मधु और सौरभ
दान सारा एक दिन,
किन्तु रोता कौन है
तेरे लिए दानी सुमन ?[१]

साथ ही फूल के आत्मत्याग की प्रशंसा भी की गयी है—

विश्व में हे फूल ! तू—
सबके हृदय भाता रहा !
दान कर सर्वस्व फिर भी—
हाय हर्षाता रहा ![२]

यहां पुष्प के माध्यम से परोपकार, आत्मत्याग एवं बलिदान के उच्च आदर्श को चरितार्थ किया गया है। कवयित्री का करुण भाव अन्ततः उच्च आदर्श, महान् प्रेरणा एवं सूक्ष्म तत्त्वबोध में परिणत होता हुआ औदात्य से परिपूर्ण हो जाता है।

प्रसाद मानव-जीवन की विषमताओं और आज के जीवन की विभीषिकाओं पर गम्भीरता से विचार करते हुए इस परिणाम पर पहुंचता है कि जीवन और जगत् दोनों मूलतः सत्य हैं, सुन्दर हैं एवं मंगलमय हैं।[३] परन्तु

१. महादेवी—नीहार, पृ० ३०
२. वही
३. चिति का विराट् वपु मंगल
यह सत्य, सतत, चिर-सुन्दर
—प्रसाद—कामायनी—आनन्द सर्ग, पृ० २३०

जीवन का एकांगी विकास ही विषमताओ एवं विभीषिकाओं आदि का मूल कारण है। भाव व्यापार और विचार अथवा इच्छा, कर्म और ज्ञान मे विषमता ही जीवन की सबसे बडी समस्या है। इनमे समन्वय, सामजस्य और सामरस्य उस आनन्द की भूमिका हो सकती है जो कवि की दृष्टि मे जीवन का प्राप्य है। इसी चिन्तन प्रक्रिया की भावमयी अभिव्यक्ति का प्रतिफलन कामायनी मे हुआ है। इस तरह जीवन की विषमता प्रसाद के अनुसार व्यक्ति के अन्तस की समस्या है। आनुषागिक रूप से कामायनी मे नर और नारी की प्रकृति और प्रवृत्तियो का चित्रण है। भोग और त्याग की सीमाओं का निरूपण है। सुख और दु:ख के परिहार का प्रयास है तथा व्यक्ति एवं समाज की समस्याओ का सुलझाव सामरस्य में बताया गया है सभी की परिणति आनन्द मे की गई है।

कामायनीकार ने अपने इस कथ्य के प्रतिपादन के लिए शैव-दर्शन के आनन्दवाद को आधार बनाया है और आर्य साहित्य मे मानवों के आदिपुरुष मनु को नायक रूप में चुना है। कवि के अनुसार "यह काव्य मनोवैज्ञानिक इतिहास एवं मानवता के विकास का भावमय रूपक बन सकने मे समर्थ हो सकता है"।[1]

## चिन्तन पक्ष में औदात्य

प्रसाद ने जिस सामरस्य एवं आनन्द की प्रतिष्ठा मे व्यक्ति एवं युग की सब समस्याओं का सुलझाव ढूंढा है उस पर शैव-दर्शन का प्रबल प्रभाव है। प्रतिभावान् व्यक्ति जब गहराई मे अपने युग की चिन्ताओ, आशंकाओं, समस्याओ एवं त्रासद-स्थितियो से जूझता है तो वह समस्या के मूल कारणो को समझने और उनका समाधान बैठाने के लिए एक ओर अतीत के श्रेष्ठतम अनुभव का प्रयोग करता है दूसरी ओर भविष्य के उज्ज्वलतम स्वप्नो को आधार बनाता है इससे अतीत को युग सन्दर्भ मे नया अर्थ मिलता है। वर्तमान को भविष्य में अग्रसर होने के लिए नया आदर्श। श्रेष्ठतम की श्रेष्ठता इसी बात मे होती है कि वह नये सन्दर्भों में नयी-नयी अर्थवत्ता को ध्वनित करता रहता है।

प्रसाद ने अपने सम्पूर्ण साहित्य मे एवं विशेषत. कामायनी मे भारतीय चिन्तन की दो आधारभूत चिन्ता धाराओ का युग-सन्दर्भ मे विवेचन किया है। एक आत्मवाद, जिसकी पूर्ण प्रतिष्ठा शैव आनन्दवाद में हुई दूसरे बुद्धिवाद जिसका विकास बौद्धों एवं जैनो के अनात्मवाद में हुआ। इनमें प्रसाद के अनुसार पहला दर्शन स्वस्थ प्रसन्न जाति का जीवन दर्शन है, दूसरा पतनोन्मुख हीन वीर्य जाति का। प्रसाद ने स्वभावत: प्रथम चिन्तन पद्धति को अपने

१. प्रसाद—कामायनी—आमुख, पृ० ४

प्रतिपाद्य का आधार बनाया है। दूसरी धारणा को अधिकतर पूर्व पक्ष के रूप में चित्रित किया गया है। बौद्ध-दर्शन की उदात्त करुणा प्रसाद को प्रिय है। परन्तु इस चिन्तन का क्षणवाद, शून्यवाद एवं दुःखवाद पूर्व पक्ष के रूप मे अर्थात् मनु की चिन्ता एवं प्रश्नानुकलता के रूप में चित्रित हैं। श्रद्धा द्वारा उनका उत्तर और प्रत्याख्यान प्रसाद की चिन्तन पद्धति का प्रतिफलन है। मनु के रूप में कवि के जीवन की वैयक्तिक वेदना एवं अभावात्मक मनःस्थिति को अभिव्यक्ति मिली है। श्रद्धा के रूप में कवि ने अपने जीवन के अभिलाषित प्राप्य का चित्रण किया है। वर्तमान वैज्ञानिक चिन्तन के अनेक सिद्धान्त भी कामायनी में यत्र-तत्र प्रतिध्वनित हैं। प्रसाद की अपनी मानव-विकास की परिकल्पना उसी से प्रेरित लगती है। विकासवाद के अन्तर्गत 'परिवर्तनवाद, परमाणुवाद एवं शक्तिस्पर्धावाद का प्रभाव भी कामायनी में दृष्टिगोचर होता है।[1] इस तरह कामायनी में प्रतिपादित चिन्तन के आधार एवं लक्ष्य का औदात्य असदिग्ध है। मानव केन्द्रित चिन्तन के प्रथम चरण में ऐसा उद्दाम आवेग और उत्साह था कि मनुष्य में उन सब गुणों की स्थिति एवं संभावना देखी गई जो गुण शताब्दियो से ईश्वर में कल्पित किये जाते रहे थे। अतएव कामायनीकार की दृष्टि में सृष्टि, सत्य, 'सतत चिर सुन्दर' हो गई है। सभी समस्याओं का सुलझाव 'चेतनता एवं विलसती' आनन्द अखण्ड घना था, में पा लिया गया है यह दृष्टिकोण युग की देन है। किसी न किसी रूप में न्यूनाधिक मात्रा मे उस युग के सभी महान् व्यक्तियों मे पाया जाता है।

कामायनी में नवजागरण की दीप्ति से प्रेरित जीवन दृष्टि का प्राधान्य है परन्तु मात्र चिन्तनगत औदात्य, कृतिरूप मे कामायनी के मूल्यांकन का कदाचित् उपयुक्त आधार नही।

## चिन्तन का वस्तु-विन्यास पर प्रभाव

कामायनी में चिन्तन पक्ष इतना प्रधान है कि वस्तु-विन्यास मे भी कवि चिन्तन क्रम का (जीवन के तीनों पक्षों) इच्छा, क्रिया, ज्ञान का प्रतिफलन देखा जा सकता है। चिन्ता सर्ग से लज्जा सर्ग तक भावलोक का चित्रण प्रमुख है इसमे। वासना एवं लज्जा सर्ग मे प्रसाद के प्रेम और सौन्दर्य चित्रण की उत्कृष्टता भी देखी जा सकती है। कर्म सर्ग से संघर्ष सर्ग तक कर्मलोक की विभीषिकाओं एवं विषमताएं संकेतित हैं। निर्वेद और दर्शन सर्ग के पूर्वार्ध मे ज्ञानलोक की अरसता का चित्रण है। तदनन्तर मनु भोक्ता की अपेक्षा 'द्रष्टा' की स्थिति में पहुंचने लगते हैं। अपनी मुक्त-पूर्व तीनों स्थितियों या तीनों लोकों की एकांगिता जन्य

१. डॉ० नगेन्द्र—आस्था के चरण, पृ० ५६३-७१

विषमता को चेतना के स्तर तक देखते हैं। तीनों लोकों के रूप में चिन्ता से निर्वेद सर्ग तक की स्थिति का पुनराख्यान है परन्तु यह पुनरावृत्ति न होकर पूर्वघटित के भावमय सार का अवलोकन है इसलिए यह अधिक घनीभूत है। यहा कवि की जीवन दृष्टि या चिन्तन पद्धति की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। द्रष्टा होने पर भी मनु को अभी सम्यक् दृष्टि नही मिली है। उनके पूर्ण संस्कार अभी अवशिष्ट हैं इसलिए श्रद्धा की मधुर स्मृति से सम्बद्ध (भावलोक) को देखकर मनु कह उठते हैं—

सुन्दर यह तुमने दिखलाया।[1]

परन्तु कर्मलोक को देखकर, जहां वे बुद्धि के अतिवाद से मुमूर्ष हो गये थे, मनु वितृष्णा से भर उठते हैं—

"बस ! अब और न इसे दिखा तू
यह अति भीषण कर्म-जगत है।[2]

ज्ञानलोक की अरस स्थिति से अवगत होते समय दोनों (मनोभूमि और चेतना भूमि) कथाबिन्दु एक हो जाते हैं। 'भोक्ता' मनु का द्रष्टा मनु मे विलय हो जाता है। मनु के कुछ कह सकने के पूर्व ही श्रद्धा की स्मिति ज्योति से तीनों लोको की विषमता का परिहार हो जाता है। पुराने संस्कार और त्रिताप नष्ट हो जाते हैं। मनु सामरस्य की आनन्दमयी स्थिति मे पहुंच जाते हैं। स्वाप-स्वप्न जागरण-भस्म हो।

दोनो स्थलो पर प्रसाद के चिन्तन क्रम का आग्रह उनके सहज विकास एवं परिणति मे अवरोधक रहा है। चिन्तन की गुरुता चरित्रों के व्यक्तित्व के लिए दुर्वह रही है। उदात्त की दृष्टि से श्रद्धा का चरित्र अपेक्षाकृत कम खडित हुआ है। उसमे उदात्त गुण प्रचुर मात्रा मे हैं। मनु का व्यक्तित्व प्रारम्भ मे उदात्त गुणों का आभास देकर ईर्ष्या एवं अहंकार आदि चरित्र दोषो के कारण तीव्रता से अपकर्ष की ओर गया है। मूर्च्छित होने के पश्चात् वह स्वयं नही चलते; श्रद्धा उन्हें चलाती है। आनन्द सर्ग का औदात्य मनु के निजी चरित्र गुणो से अर्जित नही है। इडा मे उदात्त की सभी सम्भावनाएं थी परन्तु उसे बरबस ग्लानि ग्रन्थि ढोने वाली बना दिया गया है। आनन्द सर्ग मे भी इसका परिहार नहीं किया गया है।[3]

१. प्रसाद—कामायनी—रहस्य सर्ग, पृ० २१२
२. वही, पृ० २१५
३. आनन्द सर्ग, पृ० २२७

## भावयोजना और औदात्य

कामायनी की भावयोजना में निजी वैशिष्ट्य है। सामान्यतः प्रबन्ध काव्य मे वस्तु-विन्यास एवं पात्रो के क्रियाकलाप के माध्यम से भाव एवं चिन्तन प्रतिफलित होते हैं। परन्तु कामायनी मे पात्र गौण हैं और क्रियाकलाप पृष्ठ-भूमि में घटित के रूप में वर्णित है। भावो के चित्रण को प्रसाद ने इतनी अधिक महत्ता दी है कि लगभग आधे सर्गों के नाम भावो से सम्बद्ध हैं।

कामायनीकार की भावयोजना मे एक साथ स्वच्छन्द कल्पना एवं महदादर्श-प्रेरित चिन्तन का योग है। वह चिन्ता की विषम स्थिति से मनुष्य को निकालकर, समरस अखण्ड आनन्द की उत्कृष्ट स्थिति मे ले जाना चाहता है। कामायनीकार की दृष्टि मे मानवीय व्यापार के *नियामक धर्म की* अपेक्षा कर्म के प्रेरक भावो की समस्या का निरूपण अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता *है। इसलिए उसने किसी मर्यादा संस्थापक पुरुषोत्तम के चरित्र से सम्बद्ध* रामायण न लिखकर प्रेम कला की लीला का उदात्त सन्देश देने वाली 'काम वाला श्रद्धा'[1] से सम्बद्ध कामायनी लिखी है। पात्रो या घटनाओं की अपेक्षा वह प्रत्येक भाव या वृत्ति का जमकर चित्रण करता है, उनमें रमता है। तुलसी की अपेक्षा वह सूर की परम्परा से अधिक समीप है। उसका आदर्श बाल्मीकि की नैतिक दृष्टि की अपेक्षा कालिदास की सौन्दर्य बोध एवं जीवनानन्द के अधिक समीप है। प्रसाद का चिन्तन अपनी गरिमा एवं समृद्धि में महाकाव्योचित है। परन्तु उसकी वृत्ति कार्य-व्यापार या चरित्रो की अपेक्षा भावों की सूक्ष्म वृत्तियो मे रमणशील एवं प्रगीत की मधुरिमा के अनुकूल है। फलस्वरूप कामायनी *चिन्तान्वित प्रगीत प्रबन्ध अथवा अपनी ही तरह का महाकाव्य बन गया है।*

प्रबन्ध काव्य मे सहृदय के भावोद्बोध के लिए विभावों, आलम्बन एवं उद्दीपन की योजना का आधार लिया जाता है। परन्तु कामायनी में यत्र-तत्र भाव ही आलम्बनवत् चित्रित हैं। भावो की स्वरूप विवृत्ति के लिए प्रभावो के चित्रण को आधार बनाया गया है; अर्थात् भावों से अनुभावों की उत्पत्ति की अपेक्षा अनुभावों से भावस्वरूप को निरूपित किया गया है। अतः पाठक से सामान्य सहृदय की तुलना मे कही अधिक सतर्क एवं कल्पनाशील होने की अपेक्षा की गयी है। कामायनी की कथित दुर्बोधता का एक कारण यह हो सकता है। आचार्य द्विवेदी के शब्दों मे "भावुक या भावप्रवण पाठक कामायनी के *लक्ष्योभूत श्रोता नहीं हैं, चिन्ताशील सहृदय को लक्ष्य करके ही वह लिखी* गयी है उसी को उसमे आनन्द आयेगा।

१. प्रसाद—कामायनी—कामसर्ग, पृ० ६६

निराला का काव्य उच्चतर बौद्धिक धरातल पर है। वस्तुतः कामायनी की भाँति तुलसीदास मे भी भावना और बुद्धि का एकान्वयन है। कवि की शक्ति यहाँ आध्यात्मिक, रहस्यात्मक भावो को व्यक्त करने मे प्रमाणित होनी है। तुलसीदास का आध्यात्मिक भाव कथा उदात्त कल्पना पक्ष निराला के व्यक्तित्व से प्रेरित है। प्रचलित जीवन वृत्त पर सांस्कृतिक पक्ष का आरोप करके कथा के मनोनुकूल चयन मे कवि की रुचि और ऐतिहासिक दृष्टि, सास्कृतिक चेतना का परिचय मिलता है। उसमें अन्तर्मुखी भावो का चित्रण कवि की स्वतन्त्र सृष्टि है। काव्य का सम्पूर्ण वातावरण उस ऊर्ध्वंगमन भाव की प्रभावान्विति मे सहयोग देता है। सास्कृतिक चित्र देने और प्रकृति दर्शन मे कवि की उदात्त कल्पना का प्रमाण मिलता है। वस्तुतः भाव औदात्य ही कल्पना औदात्य का सृजन करता है। तुलसीदास मे कल्पना का विस्तार कथा की नयी दृष्टि अन्तर्योजना से लेकर मौलिक उद्‌भावनाओं और प्रकृति के चित्रांकन तक है।

*आत्मबोध का जैसा कलात्मक, साथ ही उदात्त और ओजस्वी चित्रण* निराला जी ने किया है वह हिन्दी साहित्य की अप्रतिम निधि है—

> "जागो-जागो, आया प्रभात,
> बांधो-बांधो किरणें चेतन,
> तेजस्वी, है तमजिज्जीवन;
> आती भारत की ज्योतिर्धन महिमाबल ।।"[1]

भारत की ज्ञान-ज्योति की महिमा का बल संसार देखेगा। जड से चेतन का दुर्धर्ष सग्राम छिड़ेगा। एक ओर दैवी शक्तिया हैं दूसरी ओर माया दिखाने वाले दैत्य। दैवी और आसुरी शक्तियों का संघर्ष राम-रावण के युद्ध के रूप मे होगा जिसमे विजय होगी दैवी संस्कृति की। तुलसीदास के प्राणों की साधना जगी। तुलसी ने अन्तिम बात जो रत्नावली से कही वह इस प्रकार है—

> "जो दिया तुमने मुझे प्रकाश,
> अब रहा नहीं लेशावकाश रहने का
> मेरा उससे गृह के भीतर;
> देखूंगा नही कभी फिरकर,
> लेता मैं, जो वर जीवन-भर बहने का।"[2]

१. निराला—तुलसीदास, पृ० ५७
२. वही, पृ० ६०

प्रदीप्त चेतना का भार लेकर तुलसी अपनी प्रिया से सदा के लिए पृथक् हो रहे हैं। अवसर की मार्मिकता तथा उद्देश्य की जटिलता—ऐसा सफल संयोग केवल निराला जैसे सफल कलाकार ही कर सकते हैं।

दर्शन और काव्य का जैसा संयोग, तुलसी की मानसिक स्थिति का आरोह-अवरोह तथा मन के विभिन्न चेतना स्तरों का चित्रण इस काव्य की अपनी विशेषता है। उदात्त और सप्राण वर्णन के लिए यह कृति सदा अमर रहेगी।

पंचवटी प्रसंग में प्रेम की परिभाषा करते हुए राम कहते हैं—

> प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
> सदा ही निःसीम भू पर।
> प्रेम की महोर्मि-माला तोड़ देती क्षुद्र, ठाठ
> जिसमें संसारियों के सारे क्षुद्र मनोवेग
> तृण-सम बह जाते हैं।।[1]

इस कविता में प्रेम भावना की विविध सम्बन्धों में विभिन्न धरातलों पर विशद् अभिव्यक्ति हुई है। शूर्पनखा में कामवेग का ज्वारभाटा दिखलाने में कवि ने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता का परिचय दिया है। राम और सीता के मधुर दाम्पत्य प्रेम का अत्यन्त उदात्त रूप प्रस्तुत करते हैं। अनसूया में सीता के प्रति सहज प्रेम भाव झलकता है। लक्ष्मण तो आज्ञा पालन, सेवा, त्याग, भक्ति-भावना की सजीव प्रतिमा है ही। पंचवटी प्रसंग के चौथे खंड में जो चिन्तन की बोझिलता के कारण नीरस हो दार्शनिक पीठिका प्रस्तुत करते हुए राम ने व्यष्टि और समष्टि की अभिन्नता सिद्ध करके प्रेम के विश्वव्यापी स्वरूप 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श प्रस्तुत किया है। निराला जी का सौन्दर्य और प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण शारीरिकता से हटकर उत्तरोत्तर सात्विकता की ओर अग्रसर हुआ है। अन्त में उसी में पर्यवसित हो गया है। 'पंचवटी प्रसंग' के आदर्श पात्रों के चरित्र के अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि उनका वास्तविक सौन्दर्य उनके प्रेम में ही है। लक्ष्मण का सारा सौन्दर्य सेवा और आज्ञा-पालन में है तो सीता का सच्चा सौन्दर्य उसके सतीत्व और पति प्रेम में। निराला जी के अनुसार "व्यक्ति के प्रेम का उदात्त रूप अथवा उसका शील सौन्दर्य ही उसके व्यक्तित्व को एक अद्भुत गरिमा और लावण्य से मण्डित करता है।"[2]

१. निराला—परिमल, पृ० २१५
२. यश गुलाटी—हिन्दी के श्रेष्ठ काव्यों का मूल्यांकन, पृ० ४८१

## दुःखवाद और उदात्त

महादेवी के दुःखवाद का उदात्त की दृष्टि से क्या महत्त्व है? उदात्त व्यक्ति तो दुःखों से जूझता है। उनका परिहार करने के लिए संघर्षरत रहता है। वह दुःखों का वरण, अनिवार्य साधन के रूप में कर सकता है, करता भी है पर दुःख उसका साध्य नहीं होगा। अतः दुःख को साध्य के रूप में प्रस्तुत करते प्रतीत होने वाले दुःख को स्वीकार ही नहीं अपितु प्रचार करने वाले इस काव्य का मूल्यांकन समस्या बन जाता है। आचार्य वाजपेयी ने इसे दूसरे शब्दों में प्रस्तुत किया है "केवल कल्पना या वैयक्तिक संवेदना की भूमि पर की गई रचना का साहित्यिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक मूल्य किस प्रकार आंका जाय।"[1]

वास्तव में समस्या का मूल कारण महादेवी के काव्य में दुःख प्रेम से भी अधिक दुःख शब्द से प्रेम या कहें मोह है। महादेवी कहती हैं "मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं, एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बांध देता है, दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।"[2] महादेवी के काव्य में करुणा या करुण शब्द का प्रयोग तो अनेक स्थलों पर मिलता है। परन्तु परदुःखकातरता से प्रेरित कविताएं अपवाद रूप में ही मिली हैं—

> कह दे माँ क्या अब देखूँ<br>
> देखूँ खिलती कलियाँ या<br>
> प्यासे सूखे अधरों को<br>
> तेरी चिर यौवन सुषमा<br>
> या जर्जर जीवन देखूँ।<br>
> मुख में म्लान हंसी है।[3]

उद्धृत कविता में यही दो अच्छे पद हैं। अन्यथा प्रसाधन मोह ने प्रकृति सौन्दर्य और जीवन की कुरूपता के वैषम्य को उभरने नहीं दिया।

उदात्त की दृष्टि से महत्त्व की बात यह है कि महादेवी के काव्य में दुःखवाद के आवरण के बावजूद प्रबल जिजीविषा है। बहुत स्थानों पर जीवन दुःख का पर्याय नहीं अपितु दुःख जीवन का पर्याय बन गया है। उस रूप में दुःख

१. वाजपेयी—आधुनिक साहित्य, पृ० ३३-३४
२. यामा, पृ० १२
३. वही, पृ० १००

का वरण जीवन का वरण हो जाता है। दुःख अपना सीमित अर्थ छोड़ देता है। आंसू शृंगार का उपकारक बन जाते हैं—

> क्यों अश्रु न हो शृंगार मुझे
> × ×
> हर छवि मे साकार मुझे।[१]

इसी प्रकार प्रियतम का दुःख भी नाम मात्र के लिए दुःख रह जाता है—

> सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी
> × ×
> इस कण कण में ममता बिखरी।[२]

यहां प्रियतम का अनुराग कण-कण के प्रति ममता के रूप में उत्फुल्लता से बिखरा है। इन पंक्तियों में अभिव्यक्त आस्था, उत्साह प्रबल एवं सहज उल्लास भावना मे एक खुलापन एवं उत्कर्षण है। ऐसी रचनाओं में पथशूल केवल इसलिए प्रिय है क्योंकि वह प्रियतम के पथ के हैं। उसके लिए तो वह अंगारों भरे ज्वाला के देश का भी प्रसन्नमन वरण कर सकती है—

> प्रिय पथ के यह शूल मुझे अति प्यारे ही हैं
> चल ज्वाला के देश जहां अंगारे ही हैं।[३]

स्पष्ट है दुःख यहां साध्य नहीं है, साधन ही है। इसी प्रकार महादेवी वर्मा जब "मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चिर हूँ"[४] कहती हैं तब विरह को साध्य रूप मे प्रस्तुत करती प्रतीत होती हैं, तब उन पर आज की बुद्धि-वादिता का प्रभाव भी अधूरे रूप मे दृष्टिगोचर होता है। मानव केन्द्रित चिन्तन के इस युग मे व्यक्ति मुक्ति के कल्पना प्रबुद्ध व्यक्ति को, चाहे वह ईश्वर में विश्वास रखता हो चाहे नहीं, मान्य नही हो सकती। इसीलिए रहस्य के उपासक रवीन्द्रनाथ ने भी भक्त को सम्बोधन करके लिखा है। मोक्ष? कहां मिलता है मोक्ष? हमारे स्वामी ने स्वयं आनन्द से सृष्टि के बन्धनों का वरण किया है। वह सदा के लिए हम से बंधा है।[५] महादेवी ने इस

१. दीपशिखा, पृ० १२७-२८
२. यामा, पृ० २५४
३. वही, पृ० २१३
४. वही, पृ० २१८
५. Collected Poems and Plays of Rabindra Nath Tagore, p. 7.

रूप में इस सहजता से कविता में जीवन को स्वीकार नहीं किया है। जीवन को मात्र दुःख का या मात्र दुःख को जीवन का पर्याय समझने में चिन्तन की अस्पष्टता और एकांगिता प्रकट होती है। परिणामस्वरूप अधिकांश कविताओं में चिन्तन की अस्पष्टता और अज्ञात प्रियतम के बोध ने अनुभूति की तीव्रता का ह्रास कर दिया है। चिन्तन की एकांगिता का प्रतिफलन एकरसता में हुआ है। फिर भी महादेवी के काव्य में कहीं भी नीरसता नहीं है। ऐसी पर्याप्त रचनाएँ हैं जिनमें चिन्तन की स्पष्टता, अनुभूति की सघनता और करुणा की मार्मिकता मुखरित हुई है। ऐसी रचनाओं में दुःख, मोह और आत्म करुणा की अपेक्षा उत्साह एवं आत्मोत्सर्ग की स्निग्ध दीप्ति है। उदात्त की दृष्टि से ऐसी रचनाएँ ही महादेवी के काव्य की उपलब्धि हैं।

## छायावाद की कुछ उदात्त कविताएं

### रश्मि

महादेवी की उत्कृष्ट रचनाओं में सर्वप्रथम 'चुभते ही तेरा अरुण बाण' शीर्षक गीत ध्यान आकर्षित करता है। 'नीहार' के धुंधले, विषादपूर्ण और पीड़ामय वातावरण के पश्चात् 'रश्मि का यह प्रथम गीत' ऊषा की प्रथम किरण के स्पर्शजन्य विश्वव्यापी जीवनोन्मेष उल्लास, उन्मुक्तता और माधुर्य के चित्रण से एक खुले मन और उत्कर्ष की अनुभूति देता है। जिस रहस्यमयी के अरुण बाण से चतुर्दिक संगीत व्याप्त हो जाता है। कनक रश्मियों में अथाह सिन्धु हिलोरें लेने लगते हैं। मेघ इन्द्र धनुषी वितान में परिणत हो जाते हैं, पक्षी चहचहाने और उड़ानें भरने लगते हैं तथा कलियां चटकने खिलने लगती हैं। उसके समक्ष सहृदय का विस्मित विनत एवं उत्कर्षित होना स्वाभाविक है। गीत की लय एवं अभिव्यंजना में शक्ति की दीप्ति की अपेक्षा माधुर्य की द्रुति है। अतएव यह रचना अभिभूत करने की अपेक्षा रससिक्त करती है, बहा ले जाती है।

### नीरजा

नीरजा की 'तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या ?' शीर्षक रचना में चिर मिलन की उल्लास, मस्ती और आत्मोत्सर्ग आदि की उत्कर्ष व्यंजना है। प्रियतम के अधर विचुम्बित प्याले में मधुमय, विषमय, जो भी मिले, उसे उन्मुक्त भाव से बिना कुछ पूछे ग्रहण करने में एक ऐसी अतिक्रामी मन.स्थिति की अभिव्यक्ति है जहा विजय-पराजय, बनना-मिटना, स्वर्ग-नरक आदि सब छोड़े जा सकते हैं।[1]

उदात्त रचना की अतिक्रमिता इस बात में भी होती है कि उसकी रचना प्रक्रिया में लेखक के अपने पूर्वग्रह पीछे छूट जाते हैं। इसीलिए ऐसी रचनाओं में महादेवी को बहुचर्चित 'दु.खवाद' नहीं मिलेगा। इस संदर्भ में उदात्त में आत्मोत्तीर्णता का पर्याय हो जाता है। (यही आत्मोत्तीर्णता

1. तेरा अधर विचुम्बित प्याला—यामा, पृ० १४७

टॉल्स्टाय के अन्ना, करेनिना और तुलसी के 'रामचरितमानस' में देखी जा सकती है।[1])

'नीरजा' की एक अन्य अच्छी रचना में पराशक्ति का 'अप्सरा'[2] के रूप में चित्रण है। इस मानवीकरण में सृष्टि का सम्पूर्ण वैविध्य, अप्सरा के विभिन्न प्रसाधनों का रूप ले लेता है। आलोक और तिमिर, सित-असित चीर बन जाते हैं। रवि शशि अवतंस (कर्णभूषण) बन जाते हैं। उस शक्ति की लोकोत्तरता इन उपकरणों से ही व्यंजित हो जाती है। कविता के अन्त में कवयित्री स्वयं अपने कथ्य से अभिभूत हो विनत भाव से कह उठती हैं—

हे सृष्टि प्रलय के आलिंगन।
× ×
<u>प्रिय प्रेयसी तेरा</u> लास अमर।[3]

रेखांकित शब्द युग्म पराशक्ति की अतिक्रामिता एवं अनिर्वचनीयता को द्योतित करते हैं।

*गीत का प्रथम पद्य चिन्तन बोझिलता के फलस्वरूप प्रथम पंक्ति के* प्रभाव का विलोम है। दूसरे पद्य में 'पग पग के संगीत भरा' होने में आह्लाद की अभिव्यक्ति है। तीसरा पद्य मिटने और बनने की निरन्तरता का द्योतक है। चौथे में निर्मलता और निस्संगता है परन्तु पांचवें और अन्तिम पद्य में अवसाद है।[4] कुछ विद्वान् अन्तिम पद्य का दर्शनपरक अर्थ लगाते हैं। उनके अनुसार विस्तृत नभ के किसी कोने को अपना बना लेना मोह या आसक्ति है। कवयित्री बौद्ध दर्शन के प्रभाववश यहां अपनी अनासक्ति को अभिव्यक्त कर रही हैं आदि।[5] यहां निवेदन है कि उक्त पद्य से स्वयं यह अर्थ व्यंजित नहीं होता। महादेवी के व्यक्ति जीवन की संकेतक इन पंक्तियों का 'उलटवासी' की तरह अर्थ लगाना उदात्त के प्रतिकूल है। इस पद्य को यदि बौद्ध दर्शन का प्रतिफलन मान लिया जाय तो तीसरे पद्य में रजकण पर जलकण हो बरसने तथा नवजीवन अंकुर बनकर निकलने की इस अनासक्ति से क्या संगति है ? स्पष्ट ही इस कविता में अस्पष्ट चिन्तनजन्य भाव वैषम्य है जिसके फलस्वरूप यह कविता बहुचर्चित होकर भी उत्कर्षक नहीं है।

१. स्वर्ग मुझे क्या; निष्क्रिय लय क्या, यामा, पृ० १४२
२. यामा, पृ० १६४-६६
३. वही, पृ० २२७
४. विस्तृत नभ का कोई-कोना, यामा पृ० २२७
५. इन्द्रनाथ मदान-महादेवी, पृ० १३०

सान्ध्य गीत में कुछ अन्य रचनाएं पर्याप्त अच्छी हैं जिनमें 'हे चिर महान्' शीर्षक हिमालय को संबोधित गीत भी है। हिमालय की लोकोत्तर निस्संगता, गरिमा एवं दु:खकातरता का गौरवगान है।

नभ में गर्वित झुकता न शीश।
× ×
कितने मृदु कितने कठिन प्राण।[1]

इस रचना की अन्तिम पंक्तियों में कवयित्री ने एक कामना प्रकट की है जो उसके व्यक्तित्व को समझने में पर्याप्त सहायक है।

तन तेरी साधकता छूले
मन ले करुणा की थाह नाप।
उर में पावस दृग में विहान।[2]

रेखांकित शब्द महादेवी के काव्य आदर्श को बताते हैं। महादेवी की साधकला दीप के प्रतीक मे व्यंजित होती है और करुणा आंसुओं और बदली के रूप में। 'विहान' की प्रकाश और 'पावस' की परताप कातरता इनकी कविताओं में बहुत कम अभिव्यक्त हुई हैं।

## दीपशिखा

दीपशिखा में दीप के प्रतीक का मुख्यत: प्रयोग हुआ है। इस दीप में यद्यपि बौद्धो के 'अत्म दीपो भव' (आत्म दीपो भव) आदर्श की निस्संगता और उज्ज्वलता नही है फिर भी दृढ़ता से जलते रहने की निष्ठा और कहीं-कहीं आत्मोत्सर्ग की कामना है। प्रियतम को संबोधित और समर्पित होने पर भी युग चिन्तन के फलस्वरूप दीपशिखा मे पृथ्वी या मृत्युलोक से नाता बनाये रखने की चाह है।

उदात्त की दृष्टि से 'दीपशिखा' की तीन-चार रचनाएं उल्लेखनीय हैं। अन्यत्र चिन्तन एवं चित्र मोह (कल्पना) के आधिक्य में अनुभूति दब गई है।[3] अनुभूति की न्यूनता के अभाव में रचनाएं दीप्त वक्तव्य या चित्र संग्रह रह जाती हैं उनमे अनुभूति क्षमता नही होती। इस संग्रह की उल्लेखनीय रचनाओं मे तीसरी, पैंतीसवी, चवालीसवी, सैंतालीसवीं कविताएं हैं। इनमें तीसरी कविता

१. यामा, पृ० २१३
२. वही
३. डॉ० नगेन्द्र — आस्था के चरण, पृ० ५८४

'ओ चिर नवीन' हिमालय और सरिता के रूपक मे निस्संग कूटस्थ ब्रह्म और चंचल विकल जीव के सम्बन्ध को रूपायित करती हैं। अंतिम पंक्तियों मे यह कामना प्रकट की गई है—

पाथेय रहे तेरा दृग-जल
आवास मिले भू को अंचल।[1]

पैतीसवी कविता मे 'क्यों न अश्रु हो शृंगार मुझे' मे उल्लास और आनन्द की अभिव्यक्ति है।

हर स्वप्न स्नेह का चिर निबन्ध।[2]
× × ×
हर पल रस का संसार मुझे

यहा धरती की मनुहार हर पल पर स्वर्ग बसा देती है अतः कवयित्री का आनंदित होना स्वाभाविक है। चवालीसवी कविता (तू भू के प्राणो का शतदल) हिमालय को संबोधित है। इसमे हिमालय को ऐसे शतदल के रूप मे चित्रित किया गया है जिसके दल सित और फेन हीरक से चादनी मे निर्मित हुए हैं। रजनी ऊषा और सन्ध्या उसका मुख धोती और पोछती हैं। कवयित्री नत भू के प्राणों का परिचय देने के लिए शतदल को ही उपयुक्त पात्र समझती है।

महादेवीजी की सारी कविताए एक ही संबोध्य को निवेदित हैं। प्रतिपाद्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग किया गया है। सामान्यतः ये प्रतीक निश्चित अर्थ के द्योतक हैं। परन्तु कुछ जगह ऐसा नही भी है। अतः प्रसंग का ध्यान न रखने से भ्रान्त हो जाना असभव नही।[3] महादेवी की भाषा सामान्यतः परिष्कृत, कोमल और मधुर है। परन्तु सब जगह शुद्ध नही है। कई गीतो मे भाव विच्छिन्नता भी पाई जाती है। एक गीत एक ही भाव की पूर्ण परिणति नहीं होता। उसमे कई भाव झलक उठते हैं।[4] निष्कर्ष महादेवी के काव्य में प्रकट होने वाली जिजीविषा अस्पष्ट चिन्तन और प्रसाधनप्रियता के फलस्वरूप बहुत कम स्थानो पर उदात्त को छू सकी है। अधिकांश स्थलों पर उदात्तोन्मुखता है। इस काव्य में प्रसाद की सांस्कृतिक गरिमा, निराला की सी अभिभूत करने वाली मानवीय संवेदना और पंत काव्य की

१ महादेवी वर्मा—दीपशिखा, पृ० ७४
२. वही, पृ० १२७-१२८
३. विश्वम्भर मानव—महादेवी की रहस्यानुभूति, पृ० १२४
४. शचीरानी गुर्टू—महादेवी, पृ० ७०

शिल्प कौशल नहीं है फिर भी प्रणय के शालीन चित्रण छायावादी काव्य के रहस्यानुभूति पक्ष को निष्ठा एवं दृढ़ता से अभिव्यक्ति देने में महादेवी का अपना स्थान है।

## निराला

सरोज स्मृति शोकगीत है—"कवि के स्वानुभूत एवं स्वयं भुक्त जीवन को प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति मिली है। कुछ विद्वानों ने व्यक्ति के दीर्घ प्रगीतों में सरोज स्मृति को सर्वोत्कृष्ट रचना कहा है। इस कविता में कवि के जीवन की सम्पूर्ण कथा एवं उसके व्यक्तित्व की सम्पूर्ण गरिमा एक साथ ऐसे अपूर्व धरातल पर अभिव्यक्त हुई है कि सम्पूर्ण हिन्दी काव्य की करुणोदात्त रचनाओं में सरोज स्मृति का स्थान अप्रतिम हो गया है।"[1]

उन्नीसवें वर्ष के प्रथम चरण में सरोज पिता से विदा लेकर जीवन सिन्धु पार कर गई। कवि को सबसे बड़ी इस बात की कचोट सताती है कि वह व्यर्थ का पिता था। वह अपनी पुत्री के लिये कुछ भी नहीं कर सकता। इस न कर सकने की पीड़ा से कवि को अपने जीवन के बिना प्रतिरोध हारे हुए स्वार्थ समर याद आते हैं तथा विरोधियों द्वारा किये हुए क्षर-क्षेप और रण-कौशल का अपलक झेलना याद आता है। इस प्रकार से यह कहानी कवि के संघर्षों एवं अभावों की कहानी है जिसमें कवि टूटा है, बिखरा है, उसकी महा प्राणवत्ता बनी रही है। वह झुका नहीं है। कवि का चरित्र गुण संवेदनशील हृदय ही उसके स्वार्थ सम्पत्ति में पराजित होने का मुख्य कारण बन जाता है। वह बिना पलक झपके समर को झेल सकता है।

> एक साथ जब शत घातघूर्ण
> आते थे मुझ पर तुले तूर्ण।[2]

वह भाग्य अंक को खंडित करने के लिये भविष्य के प्रति भी अशंक भाव से देख सकता है।

> क्षीण का न छीना कभी अन्न।[3]

दीन-हीन के साथ ऐसा निश्छल तादात्म्य ऐसी मानवीयता आधुनिक हिन्दी काव्य क्षेत्र में अन्यत्र दृष्टिगत नहीं होती।

१. वाजपेयी—निराला, पृ० १०६
२. निराला—अनामिका, पृ० १२३
३. वही

## भाव वैविध्य

मुख्य स्वर वात्सल्य का है। साथ ही इसमें धीरता, विवशता, तिक्तता, औदात्य, व्यंग्य आदि विविध भावलहरियों से संवलित तरुण सुता के निधन से सम्बद्ध एवं उद्बुद्ध स्मृतियां हैं जिनमें पुत्री के रूप एवं यौवन का उदात्त चित्रण भी है जो उन्मुक्तता एवं गरिमा की दृष्टि से हिन्दी साहित्य मे बेजोड़ है।[1]

पुत्री के लिए प्रयुक्त सम्बोधनो मे अबाध आत्मीयता, पवित्रता, गरिमा, निर्मलता, कोमलता की उत्कृष्ट व्यंजना है। विवाह के समय मंगल कलश के जल से स्नात पुत्री के बारे मे कवि लिखता है—

> *देखा मैंने वह मूर्ति-धीति*"[2]
> ×　　　　　×
> आकाश बदल कर बना मही।

स्वर्गीय प्रिया संग गाये राग-रंग का और निराकार उच्छ्वसित धार शृंगार रस का साकार होकर 'रतिरूप' प्राप्त करना था। आकाश का बदल कर पृथ्वी बनना आदि ऐसी पंक्तियां हैं जिन्हें पुत्री के संदर्भ मे कोई महाप्राण व्यक्ति ही लिख सकता है। इन पंक्तियों से यह भी स्पष्ट है कि कवि की सारी कोमल, पवित्र, उदात्त भावनाओं का संबल एकमात्र सरोज रह गई थी।

> खण्डित करने को भाग्य अंक
> देखा भविष्य के प्रति अशंक।"[3]

दूसरी ओर जीवन की अनकही कथा अपने आप फूट निकलती है—

> दुख ही जीवन की कथा रही
> क्या कहूं आज जो नही कही।"[4]

उदात्त की दृष्टि से इन चार पंक्तियों से भी कही अधिक महत्त्वपूर्ण वे चार पंक्तियां हैं जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

> क्षीण का न छिना कभी अन्न।"[5]

१. कवि निराला, पृ० १०६
२. निराला—अनामिका, पृ० १३६
३. वही, पृ० १२७
४ वही, पृ० १३७
५. वही, पृ० १२३

निराला का औदात्य उनकी उस अप्रतिम मानवीय संवेदना में है जिसके फल-स्वरूप वे किसी भी अवस्था मे अपने आंसुओं के पीछे से अपने ही मुखचित्र देखते है। निराला के वीरत्व की शोभा एवं करुणा की गरिमा सी मानवीयता के सन्दर्भ मे उदात्तता को प्राप्त करती है।

## भिक्षुक

कविता का प्रारम्भ नाटकीय मुद्रा में हुआ है। इस करुणा में भी एक प्रकार का ओज एवं आवेश है। कविता के अन्त तक आते-आते कवि पाठक की अपेक्षा भिक्षुक को ही सम्बोधन कर उद्‌घोष कर उठता है—

ठहरो अहा।

यहाँ सम्बोध्य के परिवर्तन से द्योतित प्रबल आवेग पाठक को बरबस बहा ले जाता है। कवि पर दुःख तादात्म्य से उत्पन्न इस कविता का प्रभाव मात्र करुणा विगलित आंसुओं से गहरा, स्तब्ध करने वाला, और उत्प्रेरक है। इसमें अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध जगाने की क्षमता है। उदात्त की अपूर्णता इस बात में है कि उसका तालमेल अपने ही ढंग का होता है। भिक्षुक कविता के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कविता की अन्तिम पंक्तियों में न थोथी भावुकता है न नारेबाजी न अलग से चिपकाई गई है। ईमानदारी की परिदर्शिता एवं सबल स्वस्थ आवेग ने कविता को अत्युत्कृष्ट एवं लोकप्रिय बना दिया है।

## विधवा

प्रारम्भ की दो पंक्तियां पवित्रता, समर्पणशीलता एवं एकनिष्ठता का ऐसा दीप्त चित्रण है कि कवि कदाचित् विधवा की गरिमा को द्योतित करने चला है। परन्तु तीसरी ही पंक्ति क्रूर काल ताण्डव की स्मृतियों को जगाती हुई पाठक को करुणा में डुबो देती है।

यह दुःख वह जिसका नहीं कुछ छोर है।"[१]

सामान्यतः कविता यहीं समाप्त हो सकती थी परन्तु कवि पाठक को मात्र करुणा में डुबो कर नहीं छोड़ देता। विधवा की करुण स्थिति पर कवि का सहज आवेग एवं उद्वेग सहसा पाठक से झिझोड़ देने वाले तीखे प्रश्न के रूप मे प्रकट हो उठता है।

क्या कभी पोंछे किसी के अश्रुजल ?[२]

१. निराला—परिमल, पृ० १२०-१२१
२. वही

विधवा के अश्रुओं के कारण ही भारत का पतन हुआ है।

ओस कण सा पल्लवों से झर गया।"[1]

असाधारण तनाव, आवेग, उद्वेग से निःसृत अन्तिम चार पंक्तियों ने सारी कविता को एक अनूठी वक्रोक्ति दी है। कविता का कथ्य सामान्य पति-विहीना नारी की करुण स्थिति से ऊंचा उठाकर सम्पूर्ण देश के पतनोत्थान की समराशी बन जाती है पाठक को द्रवित नहीं झिझोड़ता भी है।[2]

## प्रेरणा-प्रसूत भव्य आवेग

लांजायनस के अनुसार, "भव्य आवेग से अभिप्राय ऐसे आवेग से है जिससे हमारी आत्मा जैसे अपने आप ही ऊपर उठकर गर्व से उच्चाकाश मे विचरण करने लगती है तथा हर्ष और उल्लास से परिपूर्ण हो उठती है।"[3] इसी प्रकार का आवेग उदात्त की सृष्टि करता है।

भावावेग से उत्पन्न अन्तर्दृष्टिदायिनी और सृष्टि विधायिनी कल्पना ने कविता के रूप-विन्यास मे इतना क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया कि बड़े-बड़े सुधी समालोचकों को भी छायावाद केवल नई काव्य-शैली प्रतीत हुआ। आचार्य शुक्ल के अनुसार, "छायावाद जिस आकांक्षा का परिणाम था उसका लक्ष्य केवल अभिव्यंजना की रोचक प्रणाली का विकास था।"[4] कल्पना के आकाश से रूपों की जो वर्षा हुई उसी के कणों को हृदय में धारण करके कवि ने ये मोती उपजाए थे। परन्तु वर्षा का वह जल भी शुद्ध आकाश की उपज न थी। इस प्रकार छायावादी काव्य सौन्दर्य की उत्पत्ति के विषय मे छायावाद की ओर से बोलते हुए निराला ने स्पष्ट कर दिया कि इसकी उत्पत्ति कवि के उस हृदय से हुई है जो सामाजिक आन्दोलन से उत्थित भावावेग और कल्पना को धारण करने वाला है।

प्रभात की पहली किरण ने जिस प्रकार रवीन्द्रनाथ के निर्झर हृदय का स्वप्न भंग कर दिया उसी प्रकार सुमित्रानन्दन पंत जी की बाल विहंगिनी को गान तो सिखाया ही, उनके तिमिराच्छन्न जगत् को सहसा विभिन्न नाम रूपो में बदल दिया? जहा निराकार तम के अतिरिक्त कुछ भी न दिखायी देता था वहा सुन्दर सृष्टि दिखाई पडने लगी—

१. निराला—परिमल, पृ० १२०-१२१
२. नामवरसिंह—कविता के नये प्रतिमान, पृ० १४२
३. डॉ० नगेन्द्र—काव्य में उदात्त तत्त्व, पृ० ५२
४. नामवरसिंह—छायावाद, पृ० ८३

निराकार तम मानो सहसा
ज्योति-पुंज में हो साकार,
बदल गया द्रुत जगतजाल में
धरकर नाम रूप नाना ।।[1]

फिर तो द्रुम दल पुलकित हो सिहर उठे, सुप्त समीरण अधीर हुआ, कुसुम अधरों पर हास झलका और—

खुले पलक, फैली सुवर्ण छवि,
जगी सुरभि, डोले मधु बाल,
स्पन्दन, कम्पन औ नवजीवन
सीखा जग ने अपनाना ।।[2]

छायावादी कवियों ने कहीं भी अतीत के स्वर्ण युग में लौटने की चर्चा नहीं की। उन्होंने अतीत को प्राय. प्रेरणा-स्रोत के ही रूप में स्वीकार किया है। उन्होने यह भाव तो अवश्य प्रकट किया है कि अतीत युग आज से अधिक सुन्दर और सुखद था और कभी-कभी भावावेग मे भी यह आकांक्षा प्रकट की है कि किसी प्रकार बीता हुआ वह स्वर्ण युग लौट आए। परन्तु इन सबका अर्थ अतीत का यथावत् पुनरुत्थान नही है। अतीत के विषय में छायावादी कवियों ने प्राय. यही कहा है कि आह ! अब वह स्वर्ण युग लौट नही सकता। पंत का कहना है—

कहां आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल ?
भूतियों का दिगंत छवि जाल ।[3]

इस भावावेग से छायावादी कविता मे कुछ गम्भीरता की कमी भले ही आ गई हो परन्तु इसने जीवन और जगत् को समझने की एक बहुत बड़ी शक्ति दे दी और वह शक्ति है सवेदनशीलता। विचारो से जहां हम नही पहुंच पाते, भावो से पहुंच जाते हैं। ऐन्द्रिय बोध ज्ञान का पहला सोपान है। किसी वस्तु का ज्ञान हमें सबसे पहले ऐन्द्रिय बोध से ही होता है जिसे सामान्य व्यवहार की भाषा मे हम अनुभव करते हैं। अनुभव की अवस्था में बोध्य वस्तु हमारे भावों का ही विषय होती है। जब एक ही प्रकार के ऐन्द्रिय बोध जगाने वाली अनेक

१. पंत—रश्मि बन्ध, पृ० ३५
२. वही—प्रथम रश्मि, पृ० ३५
३. पल्लव—पंत, पृ० १४७

वस्तुएँ हमारे अनुभव में आती-जाती हैं तो हम उन विशिष्ट अनुभवों के आधार पर एक सामान्य मत बनाते हैं और यही विचार होता है। तात्पर्य यह है कि भावावेग ही पहली मन:स्थिति है जिससे किसी वस्तु का ज्ञान होता है और छायावाद में इसकी प्रधानता थी इसीलिए जगत् और जीवन को समझने के लिए छायावादी कवियों को विशेष प्रकार की अन्तर्दृष्टि मिल गयी। छायावादी कवि प्रकृति और संसार के रहस्यों के प्रति जो इतने अधिक जिज्ञासु दिखाई पड़ते हैं वह इसी अन्तर्दृष्टि का प्रभाव है। हर चीज के प्रति अथक जिज्ञासा और कौतूहल छायावाद का मंगलाचरण है। छायावाद में इसी शक्ति का उन्मेष था, इसलिए उसने हिन्दी साहित्य को कुछ नया दिया। जिज्ञासा की तीव्रता जिज्ञासु के मन में एक दूसरी शक्ति को जन्म देती है जिसके द्वारा मन उस वस्तु के अन्तरतल में प्रवेश करता है। इस शक्ति का नाम है कल्पना। कल्पना शक्ति द्वारा मन अगम वस्तु तक पहुंच जाता है। दुर्लभ वस्तु को भी प्राप्त कर लेता है। जिज्ञासा ने छायावादी कवि को यही कल्पना शक्ति प्रदान की।

इस प्रकार भावावेग ने अन्ततोगत्वा कल्पना का सृजन किया। छायावाद की विशेषता बतलाते हुए समर्थ आलोचक अक्सर भावुकता और कल्पना का उल्लेख अलग-अलग दो शक्तियों के रूप में करते हैं। लेकिन छायावाद में जिस कल्पना के दर्शन होते हैं वह अप्रस्तुत विधायिनी सामान्य कल्पना नहीं है। छायावादी कल्पना केवल अलंकारों और प्रतीकों की योजना करने वाली सामान्य प्रवृत्ति नहीं है। वह सत्यान्वेषी अन्तर्दृष्टि है और ऐसी कल्पना का अभ्युदय भावावेग में ही होता है। तीव्र भावावेग में ही उदात्त कल्पना का जन्म होता है। किसी वस्तु को देखते ही मन में उससे मिलते-जुलते चित्रों का तांता बंध जाता है वह तीव्र भावावेग के कारण ही। किसी वस्तु के सौन्दर्य से उद्बुद्ध होकर मन की गति इतनी तीव्र हो जाती है कि वह अनेक तद्रूप वस्तुओं तक क्षण में पहुंच जाता है। भावावेग जितना ही तीव्र होता है अप्रस्तुत चीजों का रूप उतना ही अद्भुत और असामान्य होता है। फिर भी अद्भुत और असामान्य चित्र हृदय में नये ढंग का आह्लाद और कम्पन उत्पन्न करते हैं। संवेदना कल्पना को जाग्रत करती है और कल्पना संवेदना में वृद्धि करती है। एक ही कविता में अनुभूति की तीव्रता और कल्पना की उड़ान दोनों साथ-साथ मिल सकती है। उदाहरण के लिए 'राम की शक्ति पूजा' में राम के हृदय की तीव्र व्यथा और फिर उस व्यथा के कारण लतान्तराल मिलन की सुधि और सामने के शैल शृंग में नूतन शक्ति की प्रतिमा का दर्शन—सब साथ-साथ होता है। 'उच्छ्वास' में पन्त जी का हृदय रोता भी है और शैल की सुधि भी करता है। 'कामायनी' में मनु एक ओर चिन्ता में डूबे हुए हैं, दूसरी ओर उनकी कल्पना में ध्वस्त देव-सृष्टि के मोहक चित्र भी उभरते हैं। इसीलिए छायावाद में कल्पना को

इतना महत्व दिया गया है।

जिस प्रकार वर्तमान से असन्तुष्ट मन अतीत की ओर भागता है उसी तरह इस जगत् से असन्तुष्ट होकर किसी अन्य जगत् की खोज में निकल पड़ता है और न निकलने पर कल्पना के द्वारा एक सुखद लोक की सृष्टि कर डालता है। छायावाद युग में 'उस पर और क्षितिज के उस पार' जैसी बातें इस भावना की अभिव्यक्ति थी।"[1] परिमल में निराला स्पष्ट कहते हैं "हमें जाना है जग के पार" और कामायनी के मनु जब आह भरते हैं—

> आह, कल्पना का सुन्दर यह
> जगत् कितना मधुर होता।
> सुख - स्वप्नों का दल छाया में
> पुलकित हो जगता सोता॥[2]

"काव्य का स्वाभाविक गुण यह है जो जनता के जीवन और मन को जीवन्त प्रेरणा दे सके। व्यावहारिक परिधि में आन्तरिक आवेग एवं सौन्दर्य-प्रिय क्रियाशीलता दे सके।"[3] निराला की वाणी अपनी भौतिक सामर्थ्य का प्रतीक संविधान करती है।

'परिवर्तन' में विश्व के अन्तर में व्याप्त इस एक ही शक्ति के विषय में कहते हैं—

> एक ही तो असीम उल्लास
> विश्व में पाता विविधाभास,
> तरल जलनिधि में हरित विलास,
> शांत अम्बर में नील विकास;
> वही उर उर में प्रेमोच्छ्वास,
> काव्य में रस, कुसुमों में वास।[4]

यही एक उल्लास कभी-कभी करुणा प्लावित हो जाता है और हम सुनते हैं—

> गगन के भी उर में हैं घाव, देखतीं ताराएँ भी राह;
> बँधा विद्युत् छवि में जलप्रवाह, चन्द्र की चितवन में भी चाह;।[5]

१. नामवरसिंह—आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० ३०
२. प्रसाद—कामायनी, पृ० ४७
३. ओंकार शरद—निराला स्मृति ग्रन्थ, पृ० २
४. पन्त—पल्लव, परिवर्तन, पृ० १५८
५. वही—पृष्ठ ७२,

यही एक अज्ञात शक्ति कभी-कभी प्रियतम के रूप में स्वप्न में आकर पन्त को छायावन में फिराती है। वे विस्मित कह उठते हैं—

न जाने कौन, अये द्युतिमान !
जान मुझको अबोध, अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूँक देते छिद्रों में गान,
अहे सुख दुःख के सहचर मौन !
नहीं कह सकता तुम हो कौन ?[1]

इस अज्ञात शक्ति को जगज्जननी मान कर भी पंत ने बहुत-सी याचनाएं की हैं—

जब जगत् सत्य और सुन्दर है तो जीवन भी सत्य और सुन्दर है अतः वे कह उठते हैं—

जगजीवन में उल्लास मुझे
नव आशा नव अभिलाष मुझे।[2]

परन्तु क्या वास्तव में जीवन ऐसा ही है उसमें तो सर्वत्र ऊहापोह भ्रान्ति मची हुई है। पन्त जी प्रकृति को सजीव मानते हैं उसकी यवनिका में एक अन्तर्व्याप्ति की क्रीडा का अनुभव करते हैं। वे उसके भिन्न-भिन्न रूपों में एकता भी पाते हैं। एक अविभक्त आत्मा प्रकृति को अनुप्राणित कर रही है "असंख्य कोटि के जीवों एवं मनुष्यों से युक्त वन, उपवन, मरु-उर्वर, पर्वत समूहों से निर्मित यह पृथ्वी समस्त विभिन्नताओं के रहते हुए भी एक है वह पर्वत और दुस्तर समुद्र इसकी एकता को नष्ट नहीं कर सकते।"

*मानव स्वभाव की यह विशेषता है कि वह सहानुभूति के लिए पागल* रहता है। भावना बढ़ते-बढ़ते इतनी तीव्र हो जाती है कि जड़ वस्तुओं को भी चेतन मानकर उसमें संवेदना का अनुभव करने लगता है फिर पन्त जी तो उसको सजीव ही मानते हैं। सभी प्रकृति उन्हें अपने दुःख से दुःखी और सुख से सुखी दीख पड़ती है। कभी वह देखता है कि प्रकृति उसे मिलन के लिए संकेत कर रही है—

उठा तब लहरों से कर कौन,
न जाने, मुझे बुलाता मौन ![1]

१. पन्त—रश्मिबन्ध—मौन निमन्त्रण, पृ० ४८
२. पन्त—गुञ्जन—पृ० २६
३. पन्त—रश्मिबन्ध—मौन निमन्त्रण, पृ० ४७

और कभी ऐसा प्रतीत होता है मानो वह किसी अज्ञात छवि का प्रतिबिम्ब है जो उसके उल्लास से उल्लासित और वियोग से दुखी है। "उनका दृष्टिकोण वास्तव में न तो शैली की भांति सर्वथा मानसिक ही है और न वर्डस्वर्थ की तरह आध्यात्मिक ही, और न वह कीटस के सदृश ऐन्द्रिय ही हो सकता है—उसमें तो मानसिकता और प्राकृतिकता का भव्य चित्रण मिलता है। कवि ने प्रकृति के ताने-बाने में मानव आत्मा का रूप रंग भर कर उसका अपूर्व अंकन किया है।"[1]

प्रसाद जी का प्रेम निरन्तर विकासशील है वह ससीम से असीम की ओर व्यष्टि से समष्टि की ओर—

मेरा अनुराग फैलने दो
नभ से अभिनव कलरव में।[2]

सतत् विकसित होता है। वास्तव में यहां कवि का प्रेम प्रकट, प्रांजल एवं गंभीर हो गया है।

यौवनागम के कारण प्रसाद की नायिका के मालती कुञ्ज में प्रेम की मादक कामनाएं खिल उठती हैं—वह अपने रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर स्वयं ही पागल हुई जा रही है—

"मेरे उस यौवन के मालती मुकुल में !
रंध्र खोजती थी, रजनी की नीली किरणें
उसे उकसाने को हंसाने को।
पागल हुई मैं अपनी ही मृदुगंध से।
कस्तूरी मृग जैसी।
पश्चिम जलधि में,
मेरी लहरीली नीली अलकावली समान
लहरें उठती थीं मानो चूमने को मुझको,
और सांस लेता था समीर मुझे छूकर।।"[3]

नायक भी सम्मिलन सुख की आकांक्षा में रत है। वह भी अब तक केवल इसलिए आंखमिचौनी खेलता रहता, क्योंकि प्रेमी ने अपने अस्तित्व को विलग रखा था। आज कवि ने इस रहस्य को जान लिया कि उसका प्रिय

१. सुमित्रानन्दन पन्त—डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४२
२. लहर—प्रसाद, पृ० ३६
३. वही—पृ० ५६

उसके अन्तर में ही बन्दी है, तभी कहता है—

> तुम हो कौन और मैं क्या हूं ?
> इसमें है क्या धरा, सुनो।
> मानस जलधि रहे चिर चुम्बित
> मेरे क्षितिज ! उदार बनो ॥[1]

इस प्रकार महादेवी का प्रिय भी उन्हीं में वास करता है। अन्त में प्रेमी-प्रेमिका का मिलन कुंज की शीतल छाया में हो रहा है। यह मधुर मिलन एक उदात्तता लिए, सुखद, सरल एवं चिरमधुर प्रेम का प्रतीक बनता है। उसके हृदय में अतीत की स्मृतियां जागृत हो उठती हैं—

> वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे।
> × ×
> मेरी जीवन स्मृति के जिसमें
> खिल उठते वे रूप मधुर थे।[2]

वह अपनी आह बाहर नहीं निकलने देता किन्तु उद्वेगवश वह कह उठता है—

> अरे कहीं देखा है तुमने,
> मुझे प्यार करने वाले को।"[3]

वह व्यथित है दुःखी है। अभी कितने दिन उसे राह देखनी पड़ेगी—

> कितने दिन जीवन जलनिधि में।

वह आगे कहता है—

> शशि सी वह सुन्दर रूप विभा
> चाहे न मुझे दिखलाना।"

किन्तु—

> उसकी निर्मल शीतल छाया
> हिमकन को बिखरा जाना।"[4]

१. लहर—प्रसाद, पृ० १०
२. वही, पृ० २७
३. वही, पृ० ४१
४. वही, पृ० २६

इस प्रक्रिया से कवि का प्रेम विश्वव्यापी बना गया है। किन्तु उद्वेग और प्रलापतावश—

> चिर तृषित कंठ से तृप्त-विधुर
> × ×
> धीरे से वह उठता पुकार,
> मुझको न मिला रे कभी प्यार।"[1]

किन्तु वह अपने प्रिय को एक दर्शन की भूमिका पर ले जाता है। इस प्रकार प्रिय मिलन को उत्सुक प्रेम के क्षेत्र में वेदना और विरह, निराशा और पीड़ा ही पाता है। परन्तु इसी वेदना की अतिशयता मे वह एक उदात्त दर्शन की उपलब्धि करता है। इस प्रकार प्रसाद जी का प्रेम स्थूल से सूक्ष्म की ओर उदात्त जीवन दृष्टि लेकर बढ़ता है। कवि का हृदय जब भावनाओं की तीव्रता से उद्वेलित हो उठता है तब उसकी वाणी से स्वतः प्रगीत स्फुरित हो जाता है।

प्रसाद के हृदय मे भावावेगों का ही यह परिणाम है कि नदी-तट पर बैठा कवि वरुणा की शांत लहरों को देखकर अनायास ही गा उठता है—

> अरी वरुणा की शांत कछार
> तपस्वी के विराग की प्यार।।[2]

तभी उसके हृदय में अमिताभ द्वारा बौद्ध धर्म प्रचार की वे सब स्मृतियां जागृत हो जाती हैं और उसकी वाणी उन भावावेग के क्षणों में गाती-गाती समष्टि के सुख की ओर पहुंच जाती है—

> आज कितनी शताब्दियों बाद, उठी ध्वंसों में वह झंकार।
> प्रतिध्वनि जिसकी सुने दिगन्त, विश्ववाणी का बने विहार।।[3]

वर्डस्वर्थ का यह कथन है "भाव अपने आप ही अनजाने में उमड़ कर चुपचाप वह उठते हैं और गीतों की रचना हो जाती है।"

गीत में घन संश्लिष्ट भावना का सहज विस्फोट होता है। आवेश के बिना गीत की रचना सम्भव नहीं। जब कवि के हृदय मे रागात्मक अनुभूति

१. प्रसाद लहर—पृ० ३४
२. वही—पृ० १२
३. वही—पृ० १३

उदात्त प्रेम की वृत्ति भौतिक जीवन की सीमाओं को तोड़कर जन्म-जन्मांतर तक का सम्बन्ध अपने प्रिय के साथ स्थापित कर देती है। कामायनी की नायिका श्रद्धा नायक मनु को इसी परिष्कृत काम या प्रेम का पाठ पढ़ा रही है।

दुख के डर से तुम अज्ञात जटिलताओं का कर अनुमान,
काम से झिझक रहे हो आज, भविष्यत् से बनकर अनजान।
कर रही लीलामय आनन्द, महाचिति सजग हुई सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम, इसी में सब होते अनुरक्त।
काम, मंगल से मंडित, श्रेय सर्ग, इच्छा का है परिणाम,
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल बनाते हो असफल भवधाम॥[1]

व्यक्ति के जीवन में जो प्रेम ऐसी दिव्य अनुभूति प्रदान करता है यह कोई साधारण बात नहीं। प्रेम ही सृष्टि लीला की मंगलमयी प्रेरणा है और भव-धारा ही सफल बनाने का एक अमोघ अस्त्र। यह सारी सृष्टि प्रेम का विकास तो है—

यह लीला जिसकी विकस चली वह मूल शक्ति थी प्रेम-कला।
उसका संदेश सुनाने को संसृति मे आई वह अमला।[2]

कविवर पंत ने भी इसी प्रकार अपनी उदात्त भावना के सवर्ण स्पर्श से पावन प्रेम का शृंगार किया है। प्रेम की यह रसरंगमयी और आलोकवान भावना आलम्बन में अनन्त सौन्दर्य तथा पवित्रता समाहित कर देती है। पवित्रता भारतीय प्रेम व सौन्दर्य का सर्वोत्तम गुण है। पंत की इन पंक्तियों में हृदय की कितनी पावनता, कितनी माधुरी और कितनी गंभीरता समाहित हो गई है।

एक वीणा की मृदु झंकार! कहां है सुन्दरता का पार,
तुम्हें किस दर्पण में सुकुमारि, दिखाऊं मैं साकार।
तुम्हारे छूने मे था प्राण, संग में पावन गंगा स्नान।
तुम्हारी वाणी में कल्याणि, त्रिवेणी की लहरों का गान।[3]

त्वचा मांस में भी फूटा हुआ प्रेम का यह चहचहाता वसन्त विकास कितना-

१. कामायनी—प्रसाद—श्रद्धासर्ग, पृ० ६०-६१
२. वही—कामसर्ग, पृ० ८४
३. पंत—पल्लव, पृ० १८

रहस्यपूर्ण और उल्लासकारी है।

कवि पंत की प्रेम सम्बन्धी धारणा बहुत व्यापक है। वह जीवन के नाना सम्बन्धों के बीच में उसी की व्याप्ति दिखाकर—सभी को उसी प्रकाश व माधुर्य से अनुप्राणित कर—प्रेम की महानता की घोषणा कर रहा है—

> कहाँ नहीं है स्नेह? सांस सा सबके उर में।
> रुदन, यौवन, आलिंगन, मरण, सेवन, आराधन,
> शशि की सी ये कलित कलाएँ खिलक रही हैं पुर-पुर में।[1]

जीवन की सभी अवस्थाओं में मनुष्य न्यूनाधिक रूप में प्रेम से ही परिचालित रहता है। बचपन से लेकर मृत्यु तक यही तत्त्व जीवन में आकाश में नीलिमा की तरह समाया हुआ है—

> यही तो है बचपन का हास, खिले यौवन का मधुर विलास
> प्रौढ़ता का वह बुद्धिविकास, जरा का अन्तर्नयन प्रकाश!
> जन्मदिन का है यही हुलास, मृत्यु का यही दीर्घ निःश्वास![2]

प्रेम अपनी किरणें जीवन के उदात्त मानसिक शृंगों पर फेंकता है। बुद्धि, भावना तथा लोक-सेवा के आदर्शों को भी यही महिमान्वित किए है—

> यही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
> हृदय में बनता प्रणय अपार;
> लोचनों में लावण्य अनूप,
> लोक-सेवा में शिव अविकार।[3]

प्रेम केवल शारीरिक भोगमात्र नहीं है। वह इससे कहीं ऊँची वस्तु है। उससे ही हृदय की मुक्ति होती है जो वास्तविक सुख और आनन्द का मूल है—

> देह नहीं है परिधि प्रणय की
> प्रणय दिव्य है मुक्ति हृदय की।[4]

अतः प्रेम इतनी दिव्य वस्तु है कि वह कवि की साधना का लक्ष्य, उसका जीवन व प्राण हो जाता है।

१. पंत—पल्लव—उच्छ्वास, पृ० ५६
२. वही
३. वही—परिवर्तन—१५८
४. पंत—स्वर्णकिरण, पृ० ३८

प्रसाद ने कामायनी में मिलन भावना का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। श्रद्धा और मनु का मिलन इस काव्य का महत्त्वपूर्ण प्रसंग है। श्रद्धा को देखते ही मनु के प्राणों में जीवनमयी अमृत तरंग-सी दौड़ गई। उस समय मनु के हृदय में जो अनुभूति हुई वह गहरी और सशक्त है। मिलन की यह अनुभूति कितनी उल्लासमयी है—

सुना यह मनु ने मधु-गुंजार, मधुकरी का सा जब सानंद,।
किये मुख नीचा कमल-समान, प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छंद;
एक झिटका-सा लगा सहर्ष, निरखने लगे लुटे-से, कौन ?
गा रहा यह सुन्दर संगीत, कुतूहल रह न सका फिर मौन।
"कौन हो तुम वसन्त के दूत, विरस पतझड़ में अति सुकुमार ?
घन-तिमिर में चपला की रेख, तपन में शीतल मन्द बयार।
नखत की आशा-किरण-समान, हृदय के कोमल कवि की कांत
कल्पना की लघु लहरी दिव्य, कर रही मानस-हलचल शांत।[1]

कवि ने अपनी कतिपय अन्य कृतियों में भी मिलन की अनुभूति का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है।

कविवर पंत की आरम्भिक कृतियों—वीणा, ग्रंथि व गुंजन में भी मिलन भावना का बहुत ही गम्भीर, उल्लासपूर्ण व स्वाभाविक रूप दिखाई पड़ता है। प्रिय की एक मुसकान मात्र से कवि-हृदय इतना तरल व उल्लसित है कि उसे सारी प्रकृति फूली-फूली दिखाई दे रही है—

मुसकुरा दी थी क्या तुम, प्राण। मुसकरा दी थी आज विहान ?
आज गृह-वन-उपवन के पास, लौटता राशि-राशि हिम-हास।
खिल उठी आंगन में अवदात, कुद कलियों की कोमल प्रात।
मुसकरा दी थी, बोलो, प्राण, मुसकरा दी थी तुम अनजान।
आज छाया चहुँदिशि चुपचाप, मृदुल मुकुलों का मौनालाप,
रुपहली-कलियों से कुछ लाल, लद गई पुलकित पीपल डाल।
और वह पिक की मर्म-पुकार, प्रिये ! झर-झर पड़ती साभार।
लाज से गड़ी न जाओ, प्राण ! मुसकरा दी क्या आज विहान ?[2]

निश्चय ही गुंजन में कवि-हृदय का मुक्त उल्लास चहक उठा है। महादेवी जी भी शाश्वत सुख की खोज में हैं। किन्तु ऐसा सुख

१. प्रसाद—कामायनी—श्रद्धासर्ग, पृ० ५३
२. पंत—गुंजन—गीत संख्या २१

अलौकिक मिलन से ही प्राप्त हो सकता है। लौकिक व क्षणिक सुख में उन्हें सन्तोष नहीं। वे कहती हैं—

> तम के पर्दों में आना।
> हे नभ की दीपावलियो! तुम पल भर को बुझ जाना।[1]

प्रसाद ने विरह ज्वाला में अपने प्रेम को तपाकर उज्ज्वल बनाया है। आँसू उनकी मार्मिक रचना है। इसमें लौकिक आलम्बन के सहारे कवि ने अपने प्रेम को अलौकिक धरातल पर उठा दिया है। कवि का प्रेम कितना अनन्य है—

> "छलना थी, तब भी मेरा उसमें विश्वास घना था।
> उस माया की छाया में कुछ सच्चा स्वयं बना था।[2]

कवि का प्रेम परमोज्ज्वल है। कवि ने लौकिक प्रेम को अलौकिक महिमा से मंडित कर उसे स्वर्गीय बना दिया है। उसमें आत्मा का प्रकाश स्रोत फूट पड़ा है। प्रेम-पथिक, लहर, कामायनी में भी कवि ने विरह के माध्यम से इसी प्रकार प्रेम को उज्ज्वल व निर्मल बनाया है। कामायनी में काम पर प्रेम की विजय दिखाकर कवि ने उसकी दिव्यता की घोषणा की है।

ग्रन्थि व पल्लव में पंत की विरह भावना अपने पूर्ण प्राण प्रवेग से फूट पड़ी है। यही विरह कवि के हृदय को दिव्य उज्ज्वल बनाकर उसे जड़ चेतन व्यापी बना देता है। विरह में कवि-हृदय इतना उदार हो जाता है कि वह प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ को अपने प्रिय से मिलते हुए देखकर पूर्ण सन्तुष्ट होता है। सौन्दर्य और नारी के प्रति इस उदार दृष्टिकोण के कारण 'आंसू' में व्यापकत्व का समावेश हो सका। नारी भावना का उदात्तीकरण उसकी विशेषता है। प्रेम के स्वाभाविक स्वच्छ रूप में आंसू की भावनाएँ साहित्य के उदात्त रूप का परिचायक है। झरना स्वच्छंदगति से उछल कूद कर झर-झर करता रहता है। कोई उसे उच्छृंखल कह सकता है, किसी के लिए वह यौवन के प्राणों का आवेग है। प्रेम की पवित्र परछाईं में झरना बहता रहता है। कवि का मन प्रकृति की इस सरस कृति से एकाकार हो उठा है। कवि का झरना हृदय के अन्तस्तल की गिरि-गुहाओं को विदीर्ण करता हुआ प्रेमरस के प्लावन से विह्वल होकर बह रहा है। रवीन्द्रनाथ का मन-रूपी निर्झर भी अपने अन्तर की अन्ध गुहा के कारागार में आवद्ध रहने के पश्चात् प्रबल वेग से उमडता हुआ

१. महादेवी—नीहार, पृ० ३६
२. प्रसाद—आँसू, पृ० २४

मुक्त आलोक में प्रवाहित हो पड़ा है—

> माड़् रे हृदय माड़् रे बांधन
> साध रे आज के प्राणेर साधन,
> लहरीर परे लहरी तुलिया
> आघातेर परे आघात कर।
> मातिया जखन उठे थे पराण
> किसेर आधार किसेर पाषाण।

रे हृदय, आज बन्धनों को छिन्न-भिन्न करके अपनी अभिलाषा पूरी कर ले। लहर पर लहर उठाकर आघात पर आघात करता चला जा। जब प्राण मतवाले हो उठे हैं तो वहाँ का अन्धकार और कैसा पाषाण।

दोनों कलाकारों का अन्तराल ही निर्झर बन गया है। जीवन की यही उद्दाम लालसा समस्त गीतों में बिखरी हुई है। वह स्वयं स्वीकार करता है—

> सद्यः स्नात हुआ मैं प्रेम सुतीर्थ में—
> मन पवित्र उत्साहपूर्ण-सा हो गया,
> विश्व, विमल आनन्द-भवन-सा हो गया,
> मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था।[1]

प्रेमी का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है। भावावेश की मात्रा भी तीव्र है। वह कभी अतीत की स्मृतियों से उलझता है, कभी प्राणों में जिज्ञासा भर कर प्रश्न करता है। धीरे-धीरे प्रणय निवेदन व्यापक होने लगता है। प्रकृति के अणु-अणु, कण-कण और समस्त विश्व में प्रियतम दिखाई देता है। वह इस प्रेम को विश्व-व्यापी बना देता है। वह जीवन के कठोर धरातल से भी ऊपर उठता है। उसने प्रकृति और मानव का भेद समाप्त कर दिया है। प्रकृति के क्रिया-व्यापार में परम सत्ता की छाया दिखाई देने लगती है। यह अज्ञात किसी एकाकी साधना अथवा आध्यात्मिक पूजन से सम्बन्धित नहीं है। कवि जीवन के प्रति एक उदात्त भावना बना लेता है। बौद्ध दर्शन का 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय साकार' हो उठा है। झरना का प्रेम अधिक स्वाभाविक, सजीव और मांसल है। मन्दाकिनी की भांति उछलती, कूदती इन भावनाओं में गति है, जीवन है आवेग है।

१. प्रसाद—झरना, पृ० ६

किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज, रंगी हो तुम किसके अनुराग,
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान, उड़ाती हो परमाणु पराग।
धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश, मधुर मुरली सी फिर मौन,
किसी अज्ञात विश्व की विकल वेदना दूती सी तुम कौन ?
चपल ! ठहरो कुछ लो विश्राम, चल चुकी हो पथ शून्य अनन्त,।
सुमन मन्दिर के खोलो द्वार, जगे फिर सोया वहाँ वसन्त।[1]

महादेवी में गीत के लिए अपेक्षित भावावेग की कमी तो नहीं है लेकिन उनकी कविता में उस पर संयम रूपी अनिवार्य अंकुश है, फिर भी कहीं-कहीं मनोरागों का उद्वेलन संयम का बांध तोड़कर बह उठता है—

फिर विकल हैं प्राण मेरे।
तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है ?
जा रहे जिस पंथ से युग कल्प उसका छोर क्या है ?
क्यों मुझे प्राचीर बनकर
आज मेरे श्वास घेरे ?[2]

प्रसाद तो मानो गीतों के अवतार ही हैं। उनकी प्रतिभा विशुद्ध गीतात्मक है। भावों का आवेग उनके गीतों में छलका पड़ता है। उन्होंने तीव्र भावावेगों को सहज ढंग से अभिव्यक्त किया है।

किन्तु महाप्राण निराला की रागात्मक अनुभूति जितनी व्यापक एवं बलवती तथा उसे अभिव्यक्त करने की गीत पद्धति जितनी समर्थ एवं सशक्त है उतनी अन्य किसी छायावादी कवि की नहीं। उनके गीतों में भावनाओं का सागर हिलोरें लेता दिखाई पड़ता है तथा तट पर अभिव्यक्ति के स्पष्ट स्वर सुनाई पड़ते हैं—

जीवन की तरि खोल दे रे
जग की उत्ताल तरंगों पर,
दे चढ़ा पाल कल धौत धवल,
रे सबल, उठा तट से लंगर।

× × ×

१. झरना—प्रसाद, पृ० १४
२. महादेवी—यामा, पृ० २३२

बहती अनुकूल पवन, निश्चय
जय जीवन की है जीवन पर,
निरभ्र नभ, ऊषा के मुख पर
स्मिति किरणों की फूटी सुन्दर।[1]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि छायावादी कवियों ने अपने काव्य में महान् धारणाओं की क्षमता एवं प्रेरणा-प्रसूत भव्य आवेग को अत्यन्त उच्च स्थान प्रदान किया है।

१. निराला—गीतिका—५२वाँ गीत, पृ० ५७

## चतुर्थ अध्याय

# छायावादी काव्य में उदात्त भाषा-शैली

### १. उत्कृष्ट भाषा

लोंजायनस का कथन है "औदात्य अभिव्यक्ति की विशिष्टता और उत्कृष्टता का नाम है।"[1] अतः स्वभावत उदात्त की अभिव्यक्ति का माध्यम उत्कृष्ट या गरिमामयी भाषा ही हो सकती है। भाषा की गरिमा का मूल आधार है शब्द-सौन्दर्य—जिसका अर्थ है उपयुक्त और प्रभावक शब्द प्रयोग। उत्कृष्ट भाषा वह भाषा है जो गुण सहित, दोष रहित, विषयानुरूप, प्राजल और परिष्कृत हो, जिसमे माधुर्य, ओज और प्रसाद-गुण विषयानुरूप हो। इस प्रकार की भाषा उत्कृष्ट भाषा कहलाती है। छायावादी कवियो ने काव्य मे इसी प्रकार की भाषा-शैली का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग किया है। कामायनी की भाषा उसे काव्य की सर्वोत्कृष्ट सीमा तक ले जाती है। वास्तव मे भाषा ही भावो का वाहन करती है। भावना उसके माध्यम से प्रकट होती है। कामायनी मे भावों के अनुसार ही भाषा का स्वरूप प्राप्त होता है। शृंगार और करुणा से भरा काव्य प्रांजल, सरस भाषा को लेकर चला है। प्रसाद का शब्द-चयन उनके प्रौढ शिल्प का परिचायक है। भाव का अंकन करने के लिए वे उसके अनुकूल शब्दो को चुनते हैं। चिन्ता के शोक की अभिव्यक्ति अन्धकार-कालिमा, उल्का, भीषण रव, गर्जन आदि से हो जाती है। भयानक परिस्थिति के चित्र नीरस शब्दों द्वारा कवि ने प्रस्तुत किए हैं। संघर्ष, कर्म आदि के अवसर पर प्रखर शब्दो का अधिक प्रयोग हुआ है। तुमुल, रणनाद, ज्वाला, तीक्ष्ण, जन-संहार, उत्पात आदि अनेक शब्द स्थिति की भीषणता का आभास देते हैं।

उनके काव्य की शैली मानो उनके मन के इस विवश करुणा भाव को मुखरित करती है। एक जीवन व्यापी करुण-विषाद से कवि के शब्द कही-कही आर्द्र हो उठे हैं—

१. डॉ० नगेन्द्र—काव्य में उदात्त तत्व, पृ० ४४

आह ! कल्पना का सुन्दर यह
　　जगत् मधुर कितना होता ! ।
सुख-स्वप्नों का दल छाया मे
　　पुलकित हो जगता सोता है ।
संवेदन का और हृदय का
　　यह सघर्ष न हो सकता,
फिर अभाव-असफलताओं की
　　गाथा कौन यहां कहता ।[1]

काम, लज्जा के सरस वर्णन में 'कामायनी' की भाषा वेगवती सलिला की भांति प्रवाहित दिखाई देती है। काम, लज्जा का सूक्ष्म अंकन कवि के भाषा कौशल के कारण सरस रूप में प्रस्तुत हुआ है। वासना का आभास सांकेतिक शब्दों द्वारा कर दिया गया है। भाषा-भाव कामायनी में एक-दूसरे के पूरक बन कर आए हैं। भाषा भावों का आवरण नही बन जाती और न वह उनके पीछे ही रह जाती है। अपने सहज माधुर्य प्रसाद गुण से भर कर वह भावों को ले चलती है। कामायनी की भाषा सर्वत्र ही चित्रभाषा एवं प्रतीक भाषा है जिसमें तत्सम तथा सचित्र, ससन्दर्भ शब्दावली का मुक्त प्रयोग हुआ है। भारतीय काव्यशास्त्र में महाकाव्य की शैली को नानावर्णन समक्षा माना गया है। कामायनी की शैली मे यह गुण विद्यमान है कि वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और उदात्त से उदात्त मन.स्थिति का अकन करने में पूर्णत. समर्थ है। सुन्दर और विराट्, मधुर और भयानक आदि के वर्णन मे उसकी समान गति है। इसके अतिरिक्त महाकाव्य की शैली के लिए यह भी आवश्यक है कि वह विस्तारगर्भा हो, मूर्त, सघन एवं प्रबल हो, उसमे दुर्दम नद प्रवाह हो। कामायनी मे जहां भौतिक घटनाओ की प्रधानता है, इन गुणो का सम्यक् प्रयोग है। छायावादी कवियों मे प्रसाद के पश्चात् निराला ने भी अपने काव्य मे विषयानुरूप भाषा का प्रयोग किया है। निराला द्वारा रचित 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' की भाषा विषयानुरूप भाषा है। 'राम की शक्ति पूजा' की भाषा मे एक साधारण उत्कर्ष और गाम्भीर्य मिलता है। दूसरा उपक्रम चित्रण सम्बन्धी है। विराट् चित्र और दृश्य महाकाव्यात्मक शैली के हैं। युद्ध और रात्रि दृश्य, समुद्र वर्णन और शक्ति की कल्पना भी महाकाव्यो की शैली के अनुरूप हुई है। यह सब कविता को असाधारण औदात्य प्रदान करते हैं। महाकाव्यो के अनुरूप भावो के गाम्भीर्य और उदात्त उन्मेष का प्रयत्न भी कविता मे हुआ है। कुशल कवियो

१. कामायनी—प्रसाद, पृ० ४५

की भाषा की यह विशेषता होती है कि वे प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं तथा भावों के साथ-साथ भाषा का रूप भी परिवर्तित होता चलता है। शक्ति की पूजा में भाषा-सौन्दर्य सर्वत्र विद्यमान है। विषय, अनुबन्ध, भाव एवं सौन्दर्य के अनुकूल भाषा मे भव्यता, औदात्य, ओजस्विता एव सप्राणता का व्यवहार करने मे कवि ने असामान्य कौशल का परिचय दिया है। राम की शक्ति पूजा की भाषा मे गति है, स्फूर्ति है और चित्रात्मकता है।

है अमानिशा, उगलता गगन घन अन्धकार।[1]

एक ही पंक्ति मे सम्पूर्ण दृश्य साकार हो उठा है। इसी प्रकार—'पलकों का नव पलको पर प्रथमोत्थान-पतन' मे नवोढ़ा नायिका के नेत्रो की सलज्ज दशा का चित्रण कितना हृदयस्पर्शी है।

साधारणतया महाकाव्यो मे पौराणिकता का आधार लिया जाता है। क्योंकि वहा कवि की कल्पना को उन्मुक्त विस्तार मिल सकता है। कविता का पौराणिक आधार भी उसे महाकाव्योचित औदात्य देता है। कामायनी मे जहां मनु के क्षोभ और काम के अभिशाप द्वारा एक नाटकीय योजना की पद्धति अपनाई गई है और इडा और लज्जा सर्ग मे जहां मनोवैज्ञानिक भावों की तीव्रता के द्वारा परिस्थिति परिचालित औदात्य आया है वहां शक्तिपूजा मे भाषा के औदात्य से यह हुआ है। घटना-वर्णन और विराट् चित्र भी इस भाषा योजना से मिलकर इस कार्य को पूरा करते हैं। "भावो की तीव्र अभिव्यंजना और मनोवैज्ञानिक आन्तरिक संघर्ष की योजना से औदात्य लाने का प्रश्न निराला और प्रसाद दोनो का है। राम की शक्ति पूजा लेकिन महाकाव्य नहीं है।"[2] निराला काव्य मे प्रवाह, है लेकिन फैलाव नहीं है। भावना घनीभूत होकर कम से कम शब्दो मे प्रकट होती है। इसलिए शब्दो के साधारण अर्थबोध के अतिरिक्त उनमे एक गूढ़ सांकेतिकता के दर्शन होते हैं। निराला की कविता सहज सुबोध नहीं है। इसका कारण भाषा की क्लिष्टता नहीं है, भाव की गहराई—व्यंजना का बांकपन शब्दों की ध्वनि और छन्द की लय का अनुठापन भी दूसरा कारण है।

तुलसीदास जीवन के एक अल्पांश को कदाचित् जीवन के खंड को भी नहीं, मात्र एक घटना को लेकर चला है। तुलसीदास की शैली महाकाव्योचित और असाधारण महत् है। इस शैली में भाषा सम्बन्धी औदात्य के साथ भावों का गाम्भीर्य भी सहायक है। तुलसीदास की महत् शैली केवल उसकी भाषा

१. निराला—अपरा, पृ० ३४

२ आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री—अवन्तिका—जुलाई १९५४

और संस्कृतनिष्ठ पदावली में नहीं है, वह कवि के दार्शनिक व्यक्तित्व और उच्च भावों के कारण भी है।

काव्य में जब किसी गम्भीर विषय का प्रतिपादन श्रेष्ठ रीति से प्रतिभाशाली कवि द्वारा किया जाता है तब वह शैली की असाधारण महत्ता कहलाती है। तुलसीदास में इसी श्रेष्ठता और स्वाभाविकता के दर्शन होते हैं जो उसे महाकाव्य की गरिमा प्रदान करती है।

पन्त जी भाषा के प्रति सदैव सतर्क और जागरूक रहे हैं, यही कारण है कि उनकी भाषा अत्यन्त समृद्ध और सशक्त है। यह कहना अनुचित न होगा कि खड़ी बोली को ब्रजभाषा जैसी मधुरता प्रदान करने में पन्त जी का प्रमुख हाथ रहा है। पन्त जी के शब्दों में "भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है—यह विश्व की हृत्तन्त्री की झंकार है जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है।"[१] भाषा का दायित्व महान् है और काव्यभाषा का दायित्व तो और भी अधिक हो जाता है।

पन्त जी ने अनुभूति और विचार के क्षेत्र में जिस व्यापकता का परिचय दिया है उसी अनुपात में उनकी भाषा-शैली भी समुन्नत है। एक ओर हृदय की निगूढ़ वेदना का लहराता सागर विवशता के स्वर में मुखरित हुआ तो दूसरी ओर मस्तिष्क का व्यापक चिन्तन गम्भीर भाषा में व्यक्त हुआ। हमारे कवि के दोनों रूप पूर्ण समृद्ध और सजीव हैं। भाषा का स्वरूप भावानुकूल होना चाहिए। पन्त जी में भावना के अनुरूप बदलती हुई भाषा के उदाहरण एक ही कविता में भी मिल जाते हैं। पन्त जी की कविता में हर्ष, उल्लास, वेदना आदि मनोभावों के सुन्दर चित्र मिलते हैं। अधिकतर हमारे कवि ने वेदना और चिन्तन को वाणी दी है। वेदना में भाषा स्वभावतः सरल और गतिशील रही—चिन्तन में गम्भीर, दार्शनिक और स्थिर। वेदना के स्वर को पन्त जी ने कितने सरल शब्दों में अभिव्यक्त किया है—

> बालकों-सा ही तो मैं हाय !
> याद कर रोता हूं अनजान;
> न जाने होकर भी असहाय,
> पुनः किससे करता हूं मान ! !"[२]

भाषा का प्रवाह कितना द्रुत है, अनुभूति को शब्द सकोच में कितनी स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त किया है।

१ पन्त—पल्लव की भूमिका, पृ० २६
२. पन्त—रश्मिबन्ध, पृ० ३३

वेदना के अतिरिक्त कवि के जीवन मे अनेक अन्य अवसर आये हैं जैसे संयोग, हर्ष, उल्लास और चिन्ता आदि के अवसर। नारी के प्रति हृदय की गहरी अनुभूति के चित्रण में पन्त जी की भाषा में नदी की लहरो के समान तरंग रहती है। ऐसे अवसरो पर कवि ने कोमलकान्त पदावली का प्रयोग किया है। तत्सम शब्दो से आयोजित कोमलकान्त पदावली भाव प्रकाशन मे पूर्ण समर्थ रहती है। इस प्रकार की कोमलकान्त पदावली का प्रयोग कवि ने प्रकृति-चित्रण और सौन्दर्य-वर्णन के स्थलो पर किया है।

स्नेहमयि ! सुन्दरतामयि !
तुम्हार रोम रोम से, नारि !
मुझे है स्नेह अपार,
तुम्हारा मृदु उर ही, सुकुमारि !
मुझे है स्वर्गागार।[1]

× ×

विपुल कल्पना-से त्रिभुवन की विविध रूपधर, भर नभ अंक,
हम फिर क्रीड़ा कौतुक करते, छा अनन्त उर मे नि.शक॥[2]

कवि की भाषा का उत्कृष्ट रूप मिलता है, जो सर्वथा उदात्त के अनुकूल है। विचारात्मक गीतो मे भाषा की गम्भीरता मिलती है। इस प्रकार से पन्त ने भावो के अनुरूप भाषा की चर्चा की है। परिवर्तन कविता मे दो स्थल देखिए—प्रत्येक शब्द कवि के अन्तर को स्पष्ट करता प्रतीत होता है।

हाय ! सब मिथ्या बात !
आज तो सौरभ का मधुमास।
शिशिर मे भरता सूनी सांस॥[3]

कवि के हृदय मे संसार की क्षणभंगुरता के प्रति क्षोभ है। यह क्षोभ इन पंक्तियो मे हाय के दैन्य के रूप मे और 'सूनी सांस' के दु:ख के रूप मे प्रकट हुआ है। इसके बाद कवि की भावुकता पर विचारात्मकता विजय पा लेती है। यह परिवर्तन निष्ठुर परिवर्तन बन जाता है।

१. पन्त—पल्लव—पृ० ११८
२. पन्त—रश्मिबन्ध—बादल, पृ० ३५
३. पन्त—पल्लव—परिवर्तन, पृ० १४७

विपुल वासना विकच विश्व का मानस शतदल
छान रहे तुम, कुटिल काल-कृमि से घुस पल-पल,
तुम्हीं स्वेद सिंचित संसृति के स्वर्ण शस्यदल
दल मल देते, वर्षोपल बन, वांछित कृषिफल।
अये, सतत् ध्वनि स्पंदित जगती का दिङ्-मंडल
नैश गगन सा सकल
तुम्हारा ही समाधि स्थल॥[1]

भावों में परिवर्तन के साथ ही भाषा किस करवट बदल गई है। विचारात्मक गीतों में कवि ने शक्तिवान् शब्दों का प्रयोग किया है।

महादेवी ने अपने काव्य में वियोग और पीड़ा की तीव्र अनुभूति को संगीतमय, लयवती शब्दावली में इस प्रकार स्वाभाविकता से संजोया है कि उनका काव्य गेय, संगीतात्मक, प्रभावोत्पादक तथा सजीव स्वरूप धारण कर लेता है। भाव पक्ष के साथ ही उनका कलापक्ष भी श्रेष्ठ है। लक्षणा, व्यंजना, प्रतीक तथा रूपकों का प्रयोग इतना अधिक हुआ है कि कहीं भी खींचतान या बनावटीपन दिखाई नहीं देता। उन्होंने प्रकृति के विराट् रूप सौन्दर्य को नाना उपमाओं तथा रूपकों से सुशोभित करके स्वर मुखर किया है। महादेवी जी ने कवि के लिए वाग्विस्तार की प्रवृत्ति को त्याज्य माना है। वे चाहती हैं कि कवि विवेकपूर्ण ढंग से शब्द चयन करे और अपने भावावेग को सीमित शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास करे।

महादेवी के काव्य में नारी सुलभ कोमलता समर्पण, मान, संकल्प, करुणा, विरह, वेदना, शान्ति आदि भावों की प्रसंगानुरूप अभिव्यक्ति हुई है। उनके काव्य में बहुप्रयुक्त दीप, वर्ती, अश्रु, स्मित, पलक, स्वप्न आदि शब्द नारी हृदय की आन्तरिक हलचल का बोध कराते हैं। महादेवी की अतिशय आत्मनिष्ठ शैली उनकी प्रणयानुभूति के भाव संकल्पों को व्यंजित करती है।

१. रूपसि तेरा घन केश पाश।[2]
२. आ वसन्त रजनी।[3]

आदि नारी हृदय की अभिसार प्रियता बोल रही है। महादेवी की पंक्तियों में कहीं-कहीं कान्ति और आलोक झलकता है मानो उनके शब्द कवयित्री के अनन्त एवं अटूट साधना क्रम को ज्ञापित करते हैं।

१. पन्त—पल्लव—परिवर्तन, पृ० १५१-५२
२. महादेवी—नीरजा, १४४
३. वही, पृ० १३४

पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला।
अन्य होंगे चरण हारे,
और हैं जो लौटते, दे शूल को संकल्प सारे,
दुखव्रती निर्माण-उन्मद,
यह अमरता नापते पद,
बाँध देंगे अंक संसृति से तिमिर में स्वर्ण बेला।[1]

महादेवी ने भी विषयानुरूप भाषा का प्रयोग किया है जिससे उनकी भाषा उत्कृष्ट भाषा-शैली के अन्तर्गत आती है।

## गुणों के आधार पर

उदात्त भाषा या उत्कृष्ट भाषा गुणों से युक्त होती है। छायावादी कविता में माधुर्य, ओज और प्रसाद इन गुणों का यथोचित समावेश हुआ है।

माधुर्य गुण—उस गुण का नाम है जो चित्त को प्रसन्न तथा द्रवीभूत कर देता है। संयोग शृंगार से करुण में, करुण से विप्रलम्भ में तथा विप्रलम्भ से शान्त में इस गुण की अधिकाधिक अनुभूति मानी गयी है। ट, ठ, ड, ढ को छोड़कर क से म तक के वर्ण ङ, ञ, ण, न, म से युक्त वर्ण ह्रस्वर और ण, समास का अभाव या अल्प समास के पद और कोमल मधुर रचना माधुर्य गुण के मूल हैं।[2] इस कोटि की रचनाएं छायावाद के अन्तर्गत मिल जाती हैं।

बिन्दु में थी तुम सिंधु अनन्त,
एक सुर में समस्त संगीत,
एक कलिका में अखिल वसन्त,
धरा में थी तुम स्वर्ग पुनीत।।[3]

महादेवी के गीतों में कोमल भावों की व्यंजना हुई है अतः वे माधुर्य गुणों से युक्त हैं। भाव की गति के अनुकूल शब्द भी गतिशील दिखाई देते हैं।

सिहर-सिहर उठता सरिता-उर,
खुल खुल पड़ते सुमन सुधा-भर,
मचल मचल आते पल फिर फिर,
सुन प्रिय की पदचाप हो गई पुलकित यह अवनी।[4]

१. महादेवी—दीपशिखा—गीत संख्या २, पृ० ७१
२. रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण, पृ० ३१२
३ पन्त—पल्लव, पृ० १९
४. महादेवी—यामा, पृ० १३४ नीरजा

यहाँ शब्दों की पुनरावृत्ति से प्रिय के आगमन के उल्लास की मधुर व्यंजना की गई है।

याद आया उपवन,
विदेह का, प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का, नयनों से गोपन-प्रिय सम्भाषण—
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान—पतन ।।[1]

कामायनी में भी इस प्रकार के अनेक माधुर्यगुण युक्त स्थल हैं—

कुसुमित कुंजों में वे पुलकित
प्रेमालिंगन हुए विलीन, ।
मौन हुई हैं मूर्च्छित तानें
और न सुन पड़ती अब बीन ।।[2]

**ओजगुण**—वह गुण है जिसमे मन स्फूर्त एवं तेजोमय हो जाता है। ओज-गुण से युक्त रस के आस्वादन से चित्त दीप्त हो उठता है, उसमे आवेग उत्पन्न हो जाता है। ओजगुण का क्रमशः वीर से वीभत्स में और वीभत्स से रौद्र में आधिक्य होता है। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार, "भारतीय काव्य के ओजगुण एवं गौडीया रीति में उदात्त के शैली पक्ष की 'अप्रत्यक्ष विवक्षा' मिलती है।"[3] ओजगुण का अर्थ है तेज, प्रताप या दीप्ति। यह वह गुण है जो मन में उत्साह, वीरता आवेश आदि को उत्पन्न करता है। भरत का मत है कि समास युक्त, किन्तु श्रवण सुखद एवं अर्थगाम्भीर्य युक्त पदावली ओजमयी होती है। दण्डी के अनुसार समास बहुला पदावली ओजगुण से युक्त होती है। वामन के अनुसार संयुक्ताक्षरों का संयोग एवं अर्थ की प्रौढ़ता ओज के लिए आवश्यक है। ओज की निष्पत्ति के लिए (कवर्ग-चवर्ग) आदि वर्गों के प्रथम एवं तृतीय अक्षर संयुक्त होने चाहिए और ट, ठ, ड, ढ, ऋ, र, प आदि वर्णों का प्रयोग होना चाहिए।[4]

भरत एवं वामन दोनों ने ओजगुण मे अर्थ-गाम्भीर्य या अर्थ की प्रौढ़ता पर बल दिया है। यह उचित भी है। क्योंकि जो कवि मात्र वर्ण-विन्यास पर दृष्टि रख मूर्द्धन्याक्षरों की ठेल पेल मे पसीना बहाते हैं, वे उदात्त की अपेक्षा अभिहस्य की ही सृष्टि करते हैं। विराट् या उदात्त चित्रण व्यजन संगीत

१. निराला—अपरा, पृ० ३५
२. प्रसाद—कामायनी, पृ० १०
३. डॉ० नगेन्द्र—काव्य में उदात्त तत्त्व, पृ० ५४
४. भारद्वाज—रामदत्त—काव्यशास्त्र की रूपरेखा, पृ० ५५-५६

प्रधान ही हो इसका कुछ भी अर्थ नहीं हो सकता।[1] माधुर्य एवं आनन्द गुण में प्रयुक्त पदावली का भी औदात्य से विरोध नहीं, अनिवार्यता तो अर्थ गाम्भीर्य या प्रौढ़ता की है।

छायावादी कवियों ने अपने काव्य में इन गुणों का विषय के अनुरूप प्रयोग किया है।

रे उद्दाम।
अपार कामनाओं के प्राण!
बाधारहित विराट!
ऐ विप्लव के प्लावन!
सावन घोर गगन के
ऐ सम्राट्!

× × ×

वज्र-घोष से ऐ प्रचण्ड।
आतंक जमाने वाले।
कम्पित जंगम-नीड विहगम
ऐ न व्यथा पाने वाले।।[2]

पंत के काव्य मे भी यत्र-तत्र ओज गुणो की अभिव्यक्ति हुई है—

बजा लोहे के दन्त कठोर
नचाती हिंसा जिह्वा लोल,
भृकुटि के कुंडल वक्र मरोर
फुहुंकता अंध रोष फन खोल।

× ×

बहा नर शोणित मूसलधार,
रुंड मुंडों की कर बौछार,
प्रलय धन सा घिर भीमाकार
गरजता है दिगन्त सहार।
छेड़ खर शस्त्रों की झनकार
महाभारत गाता संसार।।[3]

१. पन्त—छायावाद पुनर्मूल्यांकन, पृ० १०४
२. निराला—परिमल, पृ० १३७-१३८
३. पन्त—पल्लविनी, पृ० १२७

इसी भांति महादेवी में जहां साहस और आत्मविश्वास है वहां भाषा मे भी ओज दिखाई पड़ता है—

दुखव्रती निर्माण उन्मद, यह अमरता नापते पद।
बांध देंगे अंक-संसृति से तिमिर मे स्वर्ण वेला।[1]

यहां संयुक्त वर्णों के प्रयोग से भावानुकूल ओज की सृष्टि की गई है जो कि उदात्त की कोटि मे आती है।

प्रसाद गुण—यह गुण चित्त मे शीघ्र व्याप्त हो जाता है। सभी रसों में सरल, सुबोध शब्द योजना के आधार पर इसकी प्रतीति होती है।

वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
वह तोडती पत्थर

× ×

चढ रही थी धूप,
गर्मियों के दिन,
दिवा का तमतमाता रूप,
उठी झुलसाती हुई लू,
रुई ज्यों जलती हुई भू,
गर्द चिनगी छा गई,
प्राय: हुई दुपहर,
वह तोडती पत्थर॥[2]

पन्त के काव्य मे भी यह गुण पर्याप्त मिलता है—

धूलभरे, घुंघराले, काले,
मय्या को प्रिय मेरे बाल
माता के चिर चुम्बित मेरे
गोरे,-गोरे - सस्मित गाल॥[3]

इस प्रकार से निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुणो

१. महादेवी—दीपशिखा ७१
२. निराला—अनामिका, पृ० ८०
३. पंत—पल्लव, पृ० १४१

की उपलब्धि छायावादी साहित्य में यथेष्ट मात्रा मे होती है जो कि उदात्त भाषा के लिए आवश्यक है।

उदात्त काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष मे वर्ण-विन्यास एवं गुण के अनन्तर शब्द प्रयोग विवेच्य है। नाना रूप व्यापारात्मक जगत् पदार्थ रूप में ही ग्राह्य एवं अभिव्यज्य हो पाता है। अन्य कलाओ के उपकरण, रग रेखा ध्वनि आदि भी शब्द के माध्यम से व्याख्येय हैं। शब्द माध्यम ही नही, विचार एवं भाव अथवा बोध मात्र का आयाम होते हैं, अतः समृद्ध शब्द भण्डार का अर्थ है समृद्ध भाव बोध। उदात्त काव्य के रचयिता का शब्द भण्डार समृद्ध होना चाहिए।

प्रसाद की भाषा पर समग्र दृष्टि से विचार करने पर शब्द समूह सम्बन्धी पहला महत्त्वपूर्ण तथ्य यह सामने आता है कि उन्होंने अपने युग की साहित्यिक भाषा के सामान्य प्रवाह को अपनाते हुए अपनी भाषा मे सस्कृत के तत्सम शब्दो का पर्याप्त व्यवहार किया है।

जहा एक ओर सस्कृत भाषा की पदावली के प्रति इतना मोह है, वहा दूसरी ओर अग्रेजी, उर्दू आदि भाषाओ के सैकडो शब्दो का स्वच्छन्द व्यवहार किया है। प्रसाद ने अनेक देशज शब्दो का भी प्रयोग किया है। कुछ खडी बोली मे प्रचलित हैं कुछ अर्द्ध प्रचलित या अप्रचलित। संस्कृत व अग्रेजी के अपभ्रष्ट रूप भी उनमे मिलेंगे। जैसे पूरनिमा[1] बरजती रही[2] आदि।

प्रसाद के काव्य मे कही-कही बनारसी प्रयोग भी अपनी झलक दिखा जाते हैं।

१. रहा चन्द्रिका निधि गम्भीर।
२. दीन पोत का मरण रहा।
३. क्षणभर रहा उजाला मे।
४. चुपचाप बरजती रही खडी।
५. कितने कष्ट सहे हो।[3]

इसी प्रकार से ब्रजभाषा के भी कुछ शब्द पर्याप्त होंगे— १. गैल, २. लसै, ३. मनो[4] आदि।

छायावादी कविता मे सस्कृत के प्रचलित-अप्रचलित शब्दो का प्रयोग तो हुआ ही है, इस काव्यधारा के शाब्दिक प्रयोगो को इतर भाषाओ ने भी

१ प्रसाद—आंसू, पृ० ३३
२. प्रसाद—कामायनी, पृ० ६६
३. वही, पृ० १७, १६, ३५, ६६, १४४
४. वही, पृ० ५८

पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया है। अंग्रेजी, उर्दू, फारसी तथा बंगला आदि भाषाओं के शब्द चयन सम्बन्धी प्रभाव को देखा जा सकता है।

## अंग्रेजी-प्रभाव

| | |
|---|---|
| १. लिखा मिशन को भी[1] | (मिशन) |
| २. आया स्टीमर[2] | (स्टीमर) |
| ३. जगा देती हो तड़ित प्रवाह[3] | (इलैक्ट्रिक करंट) |
| ४ गाती हो निस्तल के गान[4] | (डीप) |
| ५. जाती नव जीवन बरसा[5] | (न्यू लाइफ) |

## उर्दू फारसी का प्रभाव

१. किन्तु नजर भर देख न पाया।[6]
२. फ़ज़ा के परदो के पार[7]

## बंगला का प्रभाव

१. कनक छाया में जबकि सकाल[8]
सिहर उठती, जीवन है भार।[9]

इसके अतिरिक्त सजल, शत शत, राशि, शशि आदि शब्दो का जो प्रयोग छायावादी कविता मे प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

## ग्रामीण शब्दों का प्रयोग

१. ताराओं की पाति घनी रे।[10]
२. न हो भीड का जब रेला।[11]

१. निराला—अनामिका, पृ० १७२
२. वही, पृ० १७६
३. निराला—गीतिका, पृ० ३६
४. पन्त—पल्लव, पृ० ३२
५. महादेवी—यामा, पृ० ८६
६. निराला—अनामिका, पृ० ३४
७. महादेवी—यामा, पृ० १४
८. पंत—पल्लव, पृ० ३३
९. वही, पृ० ७७
१०. प्रसाद—लहर, पृ० १४
११. प्रसाद—झरना, पृ० १८

३. संभालो जीवन खेवनहार।[1]
४. यह नैया मेरे मन की।[2]
५. विरह में है दुरेला।[3]

छायावादी कवियों का शब्द भण्डार अत्यन्त व्यापक एवं समृद्ध है जो उदात्त काव्य के लिए पर्याप्त सहायक है।

उदात्त भाषा में शब्द का सम्यक् ज्ञान होना चाहिए। किन्तु उदात्त कलाकार अपूर्व लोकोत्तर अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग द्वारा शब्दों को नयी अर्थ भंगिमा का वाहक बना देता है। इस प्रकार भाषा को समृद्ध बनाता है। छायावादी कवियों ने भाषा को पहले से अधिक समृद्ध बनाया है। इसका कारण था कि उनका शब्द भण्डार विशाल था और उन्होंने शब्दों की अन्तरात्मा का परिचय प्राप्त किया था। "शब्द की आत्मा के ज्ञान का अर्थ है कि उनका उचित स्थान पर उपयुक्त रीति से प्रयोग होना चाहिए।"[4] एक ही अर्थ के वाचक अनेक शब्द हो सकते हैं। उनमें से किस जगह कौन अर्थ चमत्कार को बढ़ाने वाला होगा, यह जानना ही काव्य कौशल है। पर्यायवाची शब्द समानार्थी होते हुए भी अपनी विशिष्टताओं से युक्त होते हैं।

पन्त को शब्दों की अन्तरात्मा का ज्ञान बहुत अधिक है, इसी कारण उनका प्रत्येक शब्द जो यहाँ जड़ दिया गया है उसका स्थान वहीं पर निश्चित रहेगा। इसके लिए स्वयं कवि के ही विचार पर मनन करना उचित होगा—

"कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पड़ती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आंखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झंकार में चित्र और चित्र में झंकार हो।"[5]

अहे विश्व अभिनय के नायक
अखिल सृष्टि के सूत्रधार।
उर उर की कम्पन में व्यापक
ऐ त्रिभुवन के मनोविकार।[6]

१. निराला—परिमल, पृ० ३०
२. प्रसाद—आंसू, पृ० ४२
३. महादेवी—दीपशिखा—गीत २
४. शम्भुनाथ सिंह—छायावाद—पृ० ३३६
५. पन्त—पल्लव—पृ० ३०
६. वही, पृ०, ८२

उक्त चरण में नायक, सूत्रधार, मनोविकार आदि शब्दों का साभिप्राय एवं सुन्दर प्रयोग हुआ है।

निराला ने अभिसार के आनन्द से उत्फुल्ल कान्तिमती स्त्री तथा अपनी कुमारी पुत्री के लिए साभिप्राय शब्दों का प्रयोग किया है, जो अनुचित है।

प्रसाद ने अधिकतर साभिप्राय व्यंजक शब्दों का प्रयोग किया है।

> ठहर भर आंखों देख नयी, भूमिका अपनी रंगमयी,
> अखिल की लघुता आई बन, समय का सुन्दर वातायन।
> देखने को अदृष्ट नर्तन।[1]

इसमें भूमिका, रंगमयी और अदृष्ट नर्तन का प्रयोग साभिप्राय है।

## उत्कृष्ट भाषा-शैली एवं शब्द सौन्दर्य

छायावाद की भाषा मात्र चित्रमयी ही नहीं अपितु वह नवीन अन्तः-सौन्दर्य से प्रेरित है।

छायावादी काव्य की व्यापक सौन्दर्य चेतना देखकर इसे कुछ लोग सौन्दर्यवादी काव्य भी कहते हैं। इन कवियों ने सौन्दर्य को बड़ा ऊँचा महत्त्व दिया। पन्त जी की सौन्दर्य चेतना एक परिमार्जित कला साधना की चेतना है। पन्त के आरम्भिक काव्य में उनका सौन्दर्य प्रेम अधिक मुखर है। प्रसाद का सौन्दर्य प्रकृति में प्रसारित होकर भी नारी में स्थापित हुआ है। पन्त का सौन्दर्य नारी में ही न अटकर उसके बाहर प्रकृति और सूक्ष्म मानव संवेदनाओं एवं आन्तरिक भाव जगत् तक तरंगायित रहता है। निराला का सौन्दर्य भाव आत्मस्थ है। उनकी आत्मा स्वयं इस सौन्दर्य का मूल है जो प्रकृति पर प्रच्छायित और प्रतिबिम्बित होता रहता है। इतना होते भी उन्होंने सत्य और शिव को भुलाया या तिरस्कृत नहीं किया है। इनकी दृष्टि में उच्च सौन्दर्य सत्य और शिव दोनों ही हैं। पन्त जी का कथन है—

> "वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
> हृदय में बनता प्रणय अपार
> लोचनों में लावण्य अनूप
> लोक सेवा में शिव-अविकार।"[2]

१. प्रसाद—लहर, पृ० २२
२. पन्त—पल्लव—परिवर्तन, पृ० १५८

कामायनी मे लज्जा अपने को चपल सौन्दर्य की धात्री कहती हुई उसका निरूपण करती है—

मंगल कुंकुम की श्री जिसमें
निखरी हो ऊषा की लाली।

× × ×

हो नयनों का कल्याण बना
आनन्द सुमन सा-विकसा हो।
जिसमे दुख सुख मिलकर मन के
उत्सव आनन्द मनाते हों,।
उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमे अनन्त अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं, ॥[1]

इस प्रकार कवियो का सौन्दर्य कल्याण और सत्र से विरहित भावुक कल्पना के लोक का विहारी नही है। अपने उच्चातिउच्च रूप मे सर्वातिशायी होकर भी अपने भीतर जीवन के समस्त उन्नयनकारी सत्य और श्रेय तत्वों को समाविष्ट किए हुए है। इस सौन्दर्य मे सामान्य देह रूप मन और आत्मा के स्तर पर अनुभूत ऊंचे से ऊंचा भावित और आत्मीय सौन्दर्य बोध समाया हुआ है। छायावादी काव्यो मे नारी रूप और उसके अंगो का जो नख-शिख वर्णन हुआ है वह अप्रतिम है। पन्त जी ने अपनी कविताओ मे मित्र बालिकाओ के जो रूप चित्र उतारे हैं वे भी अन्तर्बाह्य सौन्दर्य की दृष्टि से अछूते हैं।

छायावादी कवि अन्त: सौन्दर्यवादी अथवा सूक्ष्म मर्मग्राही कलाकार है। अपने आन्तरिक सौन्दर्याभिव्यंजन के अभियान मे कवि स्थूल आवरणों को चीरकर वस्तुओ के भीतर प्रविष्ट कर जाता है।

छायावादी कवियो की दृष्टि भी सौन्दर्य के प्रति बहुत सूक्ष्म थी। उन्होने कालिदास की भाति सौन्दर्य का मासल वर्णन भी किया है। वे 'रूप' की 'अरू-पता' और 'अरूप' की 'सरूपता' दोनों से ही परिचित थे।

मूर्त के लिए अमूर्त देने में उनका लक्ष्य स्थूल मे छिपे सूक्ष्म अर्थ को उभारना है।

१. प्रसाद—कामायनी—लज्जासर्ग, पृ० १०८—९—१०

चन्द्र की विश्राम राका बालिका सी कान्त
विजयिनी सी दीखती तुम माधुरी सी शान्त ।[1]

चांदनी और माधुरी नारी व्यक्तित्व के सूक्ष्म पक्ष की व्यंजना करती है। यहां सौन्दर्य अपने विशुद्ध रूप में व्यंजित हुआ है। वासना या काम की गन्ध भी नहीं, फिर भी पावनता माधुर्य आदि गुणों से युक्त होकर मनमोहक है।

कामायनी में श्रद्धा के रूपवर्णन में प्रसाद जी ने सौन्दर्य के सभी स्तरों को आलोकित किया है। ऐन्द्रियता से लेकर सूक्ष्म आत्म स्तर तक कवि की दृष्टि रही है—

झुक चली सव्रीड़ वह सुकुमारता के भार ।[2]

निराला की 'जुही की कली' कविता में इसी पद्धति का विलम्बित रूप अपनाया गया है। वहां प्रस्तुत 'जुही की कली' का अप्रस्तुत नारी रूप ही विशदता से व्याख्यात हुआ है। उसके भीतर से जुही की कली की समस्त मुद्राएं अभिव्यक्त की गई हैं—

विजन वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न—
अमल कोमल तनु तरुणी जुही की कली,
दृग बन्द किए, शिथिल, पत्रांक में ।[3]

महादेवी जी का प्रसिद्ध गीत 'मैं नीर भरी दुःख की बदली' इसी रीति के अन्तर्गत है।

मैं को बदलीकहने के बाद कहीं-कहीं 'क्षितिज भृकुटी' जैसे पद भले ही प्रस्तुत-अप्रस्तुत दोनों ही पक्षों को अभिहित कर दें, पर पूरा गीत बदली की स्थितियों को ही लेकर चला है—

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना, इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली ।[4]

१. प्रसाद—कामायनी—पृ० १०१
२. वही, पृ० १७१
३. निराला—परिमल—१७१
४. महादेवी वर्मा—सान्ध्यगीत—पृष्ठ ४६

पन्त की बादल कविता का यह अंश भी 'अप्रस्तुत' चित्रण के माध्यम से बादल की स्थिति को द्योतित करता है। इन चित्रों में प्रस्तुत प्रमुख है या अप्रस्तुत ? किसका प्रभाव पाठक के मन पर अन्ततः अंकित होता है ? पौर्वे संस्कारों के आलोचक कहते हैं कि यह पाश्चात्य प्रभाव है और यहां सौन्दर्यानुभूति से आगे बढ़कर रसानुभूति तो 'प्रस्तुत' की संवेदना पर ही आधृत होती है। यहां प्रस्तुत स्वयं एक विशदीकृत 'अप्रस्तुत' के प्रकाश में विलीन हो जाता है।

इस युग की एक प्रमुख प्रवृत्ति सौन्दर्यानुभूति की है। छायावादी कवियों का सौन्दर्य बोध उनकी आत्मा का विषय था। उनकी अभिव्यक्ति उनकी अन्तर्दृष्टि का परिणाम। अतः उन्होंने सौन्दर्य की आत्मा तक पहुँचने का प्रयास किया। उनका सौन्दर्य चित्रण भाव प्रधान था, वस्तु प्रधान न था। यह सौन्दर्य चित्रण निर्जीव अथवा शारीरिक नहीं था विस्मयजनित भाव प्रवणता और चमत्कार के कारण उसमें नवीनता और प्रभावोत्पादकता आ गयी। साथ ही उनकी सौन्दर्य भूमि का भी विस्तार हुआ। उनकी दृष्टि पहले मानव सौन्दर्य तक ही सीमित थी किन्तु अब उनका ध्यान प्रकृति और जीवन के नाना रूपों पर भी गया। प्रकृति के सुन्दर और मधुर रूपों का चित्रण तो इन कवियों ने किया ही, साथ ही उसके भीषण और कठोर रूपों का भी अंकन किया।

दूसरे के भाव लेकर प्रायः सब कवियों ने कविताएं लिखी हैं। परन्तु वहां हर एक कवि ने दूसरे के भाव पर विजय प्राप्त करने की, उससे बढ़कर अपना कोई विशेष चमत्कार दिखलाने की चेष्टा की है। पन्त जी में यह बात बहुत कम है। कहीं-कहीं तो दूसरे के भावों को बदलकर उसमें कुछ अपना हिस्सा मिलाकर, चमत्कार दिखलाने में इन्हें अच्छी सफलता प्राप्त हुई है परन्तु अधिकांश स्थलों में सुन्दर से सुन्दर भावों को इन्होंने बुरी तरह नष्ट कर डाला है। यह केवल इसलिए कि भावों के सौन्दर्य पर इतना ध्यान नहीं देते, जितना शब्दों के सौन्दर्य पर।[1]

महादेवी ने दीपशिखा की भूमिका में लिखा है—"कला का सत्य जीवन की परिधि में सौन्दर्य के माध्यम द्वारा व्यक्त अखण्ड सत्य है।"[2]

महादेवी ने मुख्यतः ऊषा, सन्ध्या और रात्रि के ही चित्र अंकित किये हैं। इन चित्रों में भिन्नता इतनी है कि कोई भी एक-दूसरे से मिलता नहीं है। सन्ध्या का चित्र देखिए—

१. निराला—प्रबन्ध पद्म, पृ० ६३
२. महादेवी—दीपशिखा भूमिका, पृ० ६

गुलालों से रवि का पथ लीप,
जला पश्चिम में पहला दीप
विहंसती सन्ध्या भरी सुहाग,
दृगों से झरता स्वर्ण पराग
उसे तम की बढ एक झकोर
उड़ा कर ले जाती किस ओर ?
× × ×
अथक सुषमा का सृजन विनाश,
यही क्या जग का श्वासोच्छ्वास ?[1]

लोंजायनस की यह उक्ति सत्य प्रतीत होती है "सुन्दर शब्द ही वास्तव में विचार को विशेष प्रकार का आलोक प्रदान करते हैं।" उदात्त भाषा में शब्द-सौन्दर्य का होना आवश्यक है।

## अलंकार

शब्द-विन्यास कथन भंगिमा एवं अभिधान के विशेष प्रकार के रूप में उदात्त के शिल्प पक्ष मे अलंकारो का प्रयोग विचारणीय है। कुछ भारतीय विद्वान् तो अलंकार को काव्य की आत्मा या विच्छेदक गुण मानते रहे हैं। परन्तु साधन रूप मे काव्य में दीप्ति, आह्लादकता, सजीवता, सौन्दर्य आदि के साधन होने में अलंकारों का प्रयोग आज भी मान्य है।[2] अलंकार प्रयोग की सफलता, औचित्य अथवा भावानुरूपता एवं सहजता मे है। भव्य से भव्य अलंकार भी उसी स्थिति मे उदात्त का पोषक हो सकता है जब उसका प्रयोग स्थान, परिस्थिति, रीति और उद्देश्य के अनुकूल हो। साथ ही इस बात पर भी किसी का ध्यान जाये कि यह अलंकार है।[3] औचित्य के लिए यह भी महत्त्वपूर्ण है कि प्रयुक्त अलंकार बहुसंख्यक नहीं होने चाहिएं इससे रुचि के अभाव और शैली के वैषम्य का निदर्शन होता है।[4]

छायावादी काव्य में ऐसे अनेक पाश्चात्य अलंकारो का प्रयोग मिलता है जिनकी चर्चा लोजायनस ने उदात्त के सन्दर्भ में की है।

## मानवीकरण

मानवीकरण छायावादी कवियों का प्रिय अलंकार है। यद्यपि जड़ पदार्थों

१. महादेवी—यामा—रश्मि, पृ० ७४
२. गुप्त—गणपतिचन्द्र—साहित्यविज्ञान, पृ० २७४
३. डॉ० नगेन्द्र—काव्य में उदात्त भाव, पृ० १४
४. करुण—हरीश—ग्रीक साहित्य शास्त्र, पृ० ११२

को मानवीय रूप देने की प्रवृत्ति कालिदास आदि संस्कृत कवियों में भी अप्राप्य नही तथापि छायावादी कवियों द्वारा पाश्चात्य 'परसानिफिकेशन' अलकार के आधार पर इसका आलंकारिक रूप में प्रयोग इसे काव्य की अभिव्यजना नूतन वैचित्र्य के उत्पादन मे समर्थ एक रमणीय प्रसाधन का रूप प्रदान कर देता है। निर्जीव एवं जड पदार्थों अथवा अमूर्त विषयो पर मानवीय क्रिया-व्यापारो अथवा चेतना का आरोप करना ही मानवीकरण कहलता है।"[1] क्रूजर नामक पाश्चात्य आलोचक ने इसे "विशिष्ट प्रकार का सादृश्य-विधान कहा है।"[2]

मानवीकरण की उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि इसके दो सभव रूप हैं—१. निर्जीव पदार्थों पर मानवीय भावनाओ का आरोप, २. अमूर्त विषयों को मानवीय रूपाकार प्रदान करना।

छायावाद मे मानवीकरण अलकार की स्वतन्त्र एवं विशुद्ध रूप मे योजना विरल ही है। इन कवियो ने प्रकृति अथवा अमूर्त वृत्तियो के मानवीकरण तक ही सीमित न रहकर वर्ण्य का स्पष्ट बिम्ब अकित करने का भी प्रयत्न किया। इन कवियो ने जहा इस अलकार का सयोजन किया, वहा प्राय: बिम्बोत्पादन के प्रति भी इनका विशेष आग्रह रहा है। छायावादी कवि जीवनोद्रिक्त एवं आत्मसजग है अतएव जीवन के उद्रेक एव आत्मसजगता के इस प्रवाह में वह समस्त दृश्य ससार को समेट चला है। प्रकृति को अपने से भिन्न अलग खड़ी मानकर उसमें अपने को डुबाने की अपेक्षा उसमे अपने ही चेतना प्रवाह में उसे भी मिला लिया जो निश्चय ही उदात्त के सर्वाधिक अनुकूल है। 'झरना' कविता मे किरण को एक मानवी के रूप मे सम्बोधित कर प्रश्न पूछे गये हैं—

> "किरण तुम क्यो बिखरी हो आज
> रगी हो तुम किसके अनुराग,
> स्वर्ण-सरसिज किंजल्क समान
> उडाती हो परमाणु पराग।"[3]

लहर के एक गीत की पक्तिया भी इसी कोटि मे आती हैं—

> ले चल वहाँ भुलावा देकर, मेरे नाविक! धीरे-धीरे।
> जिस निर्जन मे सागर लहरो

:१
charac-

२. Kruzer James R.—Elements of Poetry, p. 100
Personification is a special form of comparison.

३. प्रसाद—झरना, पृ० १४

अम्बर के कानो में गहरी—
निश्चल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे ।[१]

प्रसाद ने आंसू में प्रकृति के विषम एवं मानव विरोधी रूपो को भी सामने किया है—

अवकाश असीम सुखो से
आकाश तरंग बनाता ।
हँसता सा छायापथ में
नक्षत्र समाज दिखाता ॥
नीचे विपुला धरणी है
दुख भार वहन सी करती
अपने खारे आँसू से
करुणा सागर को भरती ॥[२]

प्रसाद ने कामायनी मे भी अनेक स्थलों पर प्रकृति का मानवीकरण बड़े सुन्दर रूप में उपस्थित किया है—

"अंचल लटकाती निशीथिनी
अपना ज्योत्सनाशाली ।
जिसकी छाया मे सुख पायें
सृष्टि वेदना वाली ॥
उच्च शैल शृंगो पर हँसती
प्रकृति चचला वाला ।
धवल हंसी बिखराती अपनी
फैला मधुर उजाला ॥"[३]

× × - ×

सृष्टि हँसने लगी आँखो मे खिला अनुराग,
राग-रंजित चन्द्रिका थी, उडा सुमन पराग ॥[४]

१. प्रसाद—लहर, पृ० १४
२. वही—आँसू, पृ० ४८
३. वही—कामायनी—कर्म सर्ग, पृ० १२७
४. वही—वासना सर्ग, पृ० ६६

छायावादी काव्य मे प्रकृति का यह चेतनारोपित या मानवीकृत रूप कभी-कभी जीवन जगत् के सूक्ष्म तथ्यो की एक विराट् पृष्ठभूमि में बड़ी ही सुन्दर झांकी उपस्थित करता है—

> युगो की चट्टानों पर सृष्टि
> डाल पद चिह्न चली गंभीर।
> देव, गंधर्व, असुर की पंक्ति
> अनुसरण करती उसे अधीर ॥[1]

महाप्राण निराला ने 'सन्ध्या सुन्दरी', 'यमुना के प्रति' एव 'जुही की कली' शीर्षक कविताओं मे इसका अच्छा उपयोग किया है। अपनी 'ज्येष्ठ' कविता में कवि ने 'ज्येष्ठ' को व्यक्ति रूप प्रदान किया है—

> चराचर के हे निर्दय त्रास।
> सृष्टि भर के व्याकुल आह्वान।
> अंचल विश्वास।
> सृष्टि भर के शंकित अवसान
> दीर्घ निश्वास
> देते है हम तुम्हे प्रेम आमन्त्रण,
> आओ जीवन-शमन बन्धु जीवन-धन ॥[2]

प्रकृति मे अप्सरा एवं परियों का वर्णन करने वाले महाकवि पन्त को तो प्रकृति मे दर्शन तथा चेतना की अनुभूति हुई है। पन्त कभी 'छाया' से कहते हैं—

> हे सखि इस पावन अंचल से
> मुझको भी निज मुख ढंककर,
> अपनी विस्मृत सुखद गोद मे
> सोने दो सुख से क्षण भर ॥[3]

सुश्री महादेवी को प्रकृति सदैव सचेतन रूप में उपस्थित हुई है। वह हंसती है, रोती है, मिलनाभिसार करती तथा वियोगिनी की तरह आसू बहाती है। उनका एक चित्र देखिए—

१. प्रसाद—कामायनी—श्रद्धा सर्ग, पृ० ६४
२. निराला—अनामिका—ज्येष्ठ, पृ० ५२
३. पन्त—छाया—पल्लव, पृ० ११२

नव इन्द्र धनुष सा चीर महावर अंजन ले,
अलि गुंजित मीलित पंकज नूपुर रुनझुन ले,
फिर आयी मानने सांझ मैं वेसुध मानी नहीं ।।[1]

प्रकृति का विराट् सचेतन रूप निम्न पंक्तियों में अलिखित है—

रूपसि तेरा घन केशपाश
श्यामल श्यामल कोमल-कोमल,
लहराता सुरभित केश-पाश ।।[2]

प्रसाद जी के मानवीकृत रूप में तटस्थता होती है। कवि प्रकृति के उपकरणों पर व्यक्तित्व का आरोप कर उनके भाव व्यापारों का इस प्रकार वर्णन करता है कि उसका निजी व्यक्तित्व पृथक् रह जाता है। पन्त जी के इन वर्णनों में तादात्म्य की प्रतीति होती है। निराला जी प्रसाद से अधिक प्रकृति से प्रभावित प्रतीत होते हैं।

## विशेषण-विपर्यय

छायावादी कवियो को पाश्चात्य अलंकारों में से मानवीकरण तथा विशेषण-विपर्यय इन दो अलंकारों ने विशेष रूप से आकर्षित किया। इनमें से भी विशेषण-विपर्यय विशेष रूप से प्रिय रहा है। इसमे विशेषण का न्यास उसके विशेष्य से हटाकर उसी (विशेष्य) से सम्बद्ध किसी अन्य संज्ञा के समीप कर दिया जाता।[3] विशेषण का यह चमत्कार पूर्व प्रयोग कुंतक की दृष्टि मे "विशेषण वक्रता"[4] के अन्तर्गत आएगा। इसके मूल मे भी लक्षणा का व्यापार रहता है। छायावाद में विशेषण के वैचित्र्यपूर्ण प्रयोगों का प्राचुर्य है। इस काव्य की अभिव्यंजना कलागत प्रौढ़ि के साथ-साथ विशेषण विपर्यय की योजना मे भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई है।

१. महादेवी—यामा, पृ० १५३
२. वही—नीरजा, पृ० १४४
३. G. C. Rosser : English Literary Appreciation, p. 159
Transfered Epithet—Descriptive words taken from their Noun to which it logically belongs and placed. Next to another closely associated with the first Noun. The man raised a suspicious eyebrow.
४. आचार्य विश्वेश्वर—हिन्दी वक्रोक्तिजीवितम्—व्याख्या—प्रथमोन्मेष कारिका १६ वृत्ति, पृ० ७२

कविता के ये शब्दबंध और नाद सौन्दर्य अपने आप अपने भावों को अभिव्यक्त कर रहे हैं। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार "भाषा को समृद्ध करने का यह इतना सुन्दर साधन है कि प्रत्येक भाषा शिल्पी अनिवार्यतः इसका जाने-अनजाने मे प्रयोग करता है।"[1] ऐसे शब्दों के प्रयोग से भाषा मे रमणीयता, चित्रगुण तथा गति का स्वाभाविक रूप में समावेश हो जाता है। छायावादी कवियों ने इस अलकार को पाश्चात्य अलंकार अथवा अग्रेजी की कविता से ग्रहण किया है।

उदात्त के पोषक सादृश्यमूलक अलंकारों मे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक एवं उल्लेख प्रमुख हैं।[2]

उपमा इन सब सादृश्यमूलक अलंकारो का भी प्राण है क्योंकि स्वतः सादृश्य है। सम्पूर्ण भारतीय साहित्य और कला की दृष्टि अपने सौन्दर्य बोध के लिए सादृश्य का आश्रय ग्रहण करती है।[3]

हिल्लोल-भरा हो ऋतुपति का
गोधूली की-सी ममता हो,
जागरण प्रात.-सा हसता हो,
जिसमे मध्याह्न निखरता हो।[4]
नीचे जलधर दौड रहे थे
सुन्दर सुरधनु माला पहने
कुंजर कलभ सदृश इठलाते
चमकाते चपला के गहने॥[5]

निराला ने विधवा के लिए अमूर्त मूर्त उपमाओं का जो भव्य प्रयोग किया है वह अत्यन्त अनूठा है। उपमाओं की भव्य माला पिरो कर निराला ने विधवा को भेंट की है—

१. वह इप्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
२. वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी
३. वह दीपशिखा सी शात भाव मे लीन

१. डॉ० नगेन्द्र—देव और उनकी कविता—दि० स०, पृ० २३२
२. Shastri Surendra Nath—The Laws of Sanskrit Drama, Volume I, p 403
३. हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ० १६८
४. प्रसाद—कामायनी—लज्जा सर्ग, पृ० १०१
५. वही—रहस्य सर्ग, पृ० २५८

४. वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन।[1]

इष्टदेव की पूजा और दीपशिखा से उपमित करके विधवा के प्रति पवित्र भाव जगाया गया है तथा क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा के समान बताकर भाग्य की विडम्बना और समाज के अत्याचार से पीड़ित दशा का बोध कराया गया है। टूटे तरु की छुटी लता से समानता जताकर विधवा की पति आश्रय से हीन निःसहाय दशा का कारुणिक प्रभाव उत्पन्न किया गया है।

निराशा की गहन रात्रि में राम की आंखों मे जनकसुता की छवि जैसे अंधकार घन में विद्युत की कौंध। तुलसीदास मे रत्नावली की खुली लटें शफरी सी डोल रही हैं—

बिखरी छूटी शफरी अलकें
निष्पात नयन नीरज पलकें।[2]

तुलसीदास मे निराला की अत्यन्त भव्य उपमा योजना के दर्शन होते हैं जो कि उदात्त की कोटि में आते हैं।

पन्त ने 'छाया' कविता मे छाया को साकार रूप देने के लिए किस प्रकार नवीन उपमाओं का प्रयोग किया है—

तरुवर के छायानुवाद सी
उपमा सी, भावुकता सी
अविदित भावाकुल भाषा सी,
कटी-छंटी नव कविता सी।[3]

महादेवी : मोम सा तन घुल चुका
अब दीप सा मन जल चुका है।[4]

प्रसाद : उसी तपस्वी से लम्बे थे
देवदारु दो चार खड़े।[5]

१. निराला—विधवा, पृ० ११६
२. निराला—तुलसीदास, पृ० ५२
३. पंत—पल्लव—छाया, पृ० १०८
४. महादेवी—दीपशिखा, पृ० १०७
५. प्रसाद—कामायनी, पृ० ११

रूपक

रूपक में अत्यन्त सादृश्य के लिए उपमेय में उपमान का आरोप दिखाया जाता है। भारत में भरत के नाट्यशास्त्र से अप्पय दीक्षित के 'कुवलयानन्द' तक आलंकारिकों का ध्यान रूपक ने विशेष रूप से आकृष्ट किया है। उधर यूरोप में अरस्तू के समय से ही रूपक को अलंकारों का सम्राट् माना जाता है।[1] लोंजायनस के अनुसार "रूपकों की शृंखला उदात्त आवेग प्रवाह को व्यक्त करने में प्रायः अत्यन्त सफल रही है।"[2]

पंत :

जगत की सुन्दरता का चांद,
सजा लांछन को भी अवदात,
सुहाता बदल, बदल, दिन रात,
नवलता ही जग का आह्लाद ॥[3]

सुन्दरता में चन्द्रमा का आरोप है, पर यह चांद लांछन को भी अवदात बना देता है।

प्रसाद :

ओ चिन्ता की पहली रेखा,
अरी विश्ववन की व्याली,
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण,
प्रथम कप-सी मतवाली।
हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल लेखा।[4]

यहां चिन्ता में विश्व वन की व्याली आदि उपमाओं का आरोप किया गया है।

पंत :

घूम धुंआरे, काजर कारे,
हम ही बिकरारे बादर,
मदन राज के वीर बहादुर,
पावस के उड़ते फणिधर।[5]

१. रामअवध द्विवेदी—साहित्य सिद्धान्त, पृ० ४६
२. डॉ० नगेन्द्र—काव्य में उदात्त तत्व, पृ० १७
३. पंत—पल्लव, पृ० १३४
४. प्रसाद—कामायनी—चिन्ता सर्ग, पृ० १३
५. पंत—पल्लव, पृ० १३४

निराला उपमाओं की तरह रूपकों के भी बादशाह हैं। उनकी कल्पना चित्रमय रूपक प्रस्तुत करने में बड़ी सजग रही है।

'तुलसीदास', 'राम की शक्ति पूजा' तथा अन्य कविताओं तथा गीतों में उन्होंने विराट् रूपकों की भव्य सृष्टि की है। उनका 'राष्ट्रवंदना' का यह प्रसिद्ध गीत सागरूपक का भव्य उदाहरण है—भारत मां का कितना विराट् रूप-चित्रण हुआ है—

भारति, जय विजय करे
कनक शस्य कमल धरे।
लंका पदतल शतदल,
गर्जितोर्मि सागर जल ।।
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे।
तरु तृण लता वसन,
अंचल में खचित सुमन
गंगा ज्योतिर्जल कण
धवल धार हार गले ।।[1]

महादेवी जी ने सागरूपक का प्रयोग अपने काव्य में किया है—

१. अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर ।।[2]
२. धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ बसन्त रजनी।[3]

## अतिशयोक्ति

अतिशयोक्ति उदात्त का सर्वाधिक अनुकूल है और अत्युक्ति प्रतिकूल। लोकोत्तरता अथवा लोकातिशयता 'उदात्त' का धर्म है और अतिशयोक्ति में 'अतिशय' का ही कथन होता है। यह अतिशय उदात्त के अनुरूप आचरण, चिन्तन, भाव, प्रकृति, देश, काल आदि में से किसी भी क्षेत्र की लोकोत्तरता से सम्बद्ध हो सकता है। अतिशयोक्ति मर्म स्पर्शिनी होती है। अतिशयोक्ति में सहृदय कथ्य से अभिभूत हो जाता है। अतः यह उदात्त के पोषक अलंकारों में श्रेष्ठ स्थान रखता है।

१. निराला—अपरा, पृ० ६
२. महादेवी—यामा, पृ० १६५
३. वही—यामा, पृष्ठ १३४

प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी सभी के काव्य मे इस अलंकार का पर्याप्त प्रयोग मिलता है।

निराला के काव्य में अतिशयोक्ति का प्रयोग खूब पाया जाता है—

वह कली सदा को चली गई दुनिया से
पर सौरभ से है पूरित आज दिगन्त ॥[1]

पंचवटी प्रसंग में : विश्व भर को मदोन्मत्त करने की मादकता
भरी है *विधाता ने इन्हीं दोनो नेत्रो मे* ॥[2]

प्रसाद : बांधा था विधु को किसने इन काली जंजीरो से
मणि वाले फणियों का मुख क्यो भरा हुआ हीरो से ॥[3]

प्रिया का मुख शशि के समान सुन्दर था। काले बाल व्याल से थे। इनमे उपमेयो का निर्देश न करके उपमानो का ही निर्देश है। मोतियो से माग भरी हुई थी, उस पर कवि कहता है कि फणि सर्प तो स्वयं मणि वाला है, फिर उसका मुख हीरो से क्यो भरा है केवल उपमान निर्देश के कारण। यहां रूपकातिशयोक्ति है।

## व्यतिरेक

व्यतिरेक में विशिष्ट गुण वश उपमान की अपेक्षा उपमेय का उत्कर्ष दिखाया जाता है। उदात्त आलम्बन अपनी लोकोत्तरता मे अपरिमेय होते हैं। अतः कोई भी उपमान उनके समकक्ष नही ठहरता। इसी कारण 'असम' और 'अनन्वय' अलंकार भी उदात्त के अनुकूल हैं। 'असम' में उपमान का सर्वथा निषेध होता है और अनन्य में उपमेय ही अपना उपमान होता है। प्रसाद—

लहरें उठती थी मानो चूमने को मुझको,
और सांस लेता था समीर मुझे छूकर ॥[4]

प्रलय की छाया नामक इस प्रगीत मे व्यतिरेक के बल पर ही कमला के अद्वितीय सौन्दर्य की भावना को चमत्कृत करने के लिए कवि ने कहा कि लहरें कमला को चूमने के लिए मानो ललक-ललककर उठती हैं और समीर उसे

१. निराला—अनामिका—सरोज स्मृति, पृ० १
२. वही—परिमल—पंचवटी प्रसग, पृ० २२४
३. प्रसाद—आंसू, पृ० २१
४. वही—लहर—प्रलय की छाया, पृ० ४६

छूकर ही प्राण पाता है। इस प्रकार लहरों की ललक और समीर का अपकर्ष दिखाकर कमला के सौन्दर्य की जो अभिवृद्धि की गई है वह अत्यन्त रमणीय है और उदात्त की सहायक है।

विरोधमूलक अलंकारों में उदात्त का पोषक विभावना से सम्भव है। इसमें कारण के अभाव में अथवा अपर्याप्त कारण के रहते हुए कार्य की उत्पत्ति दिखाई जाती है। उदात्त के नियमातीत्य धर्म को इससे बल मिलता है।

महादेवी : चुभते तेरा ही अरुण बान
बहते कन कन से फूट फूट
मधु के निर्झर से सजल गान ॥[1]

पंत : कहां मेघ औ हंस ? किन्तु तुम
भेज चुके सन्देश अजान ॥[2]

प्रसाद : हृदय का राजस्व अपहृत, कर अधम अपराध,
दस्यु मुझसे चाहते हैं सुख सदा निर्बाध।[3]

मणि दीपों के अंधकारमय अरे निराशापूर्ण भविष्य !
देव-दम्भ के महामेघ में सब कुछ ही बन गया हविष्य ॥[4]

न्यायमूलक अलंकारों में 'परिकर' साभिप्राय विशेषण के कारण एवं परिकरांकुर साभिप्राय विशेष्य के प्रयोग के कारण उदात्त के अनुकूल है। निराला की राम की शक्ति पूजा में इसका प्रयोग मिलता है—

उस ओर शक्ति शिव की जो दशस्कन्ध पूजित।
× × ×
वह नहीं हुआ शृंगार युग्म गत महावीर ॥[5]

प्रसाद : मुक्ति जल की वह शीतल बाढ़
जगत की ज्वाला करती शांत।
तिमिर का हरने को दुख भार,
तेज अभिताप अलौकिक कान्त ॥[6]

१. महादेवी—यामा, पृ० ६६
२. पन्त—पल्लविनी, पृष्ठ १०६
३. प्रसाद—कामायनी—वासना सर्ग, पृ० ८५
४. वही—चिन्ता सर्ग, पृ० ७
५. निराला—राम की शक्ति पूजा, पृ० ३७
६. प्रसाद—लहर, पृ० १३

पंत :         हिम परिमल की रेशमी वायु ।[1]

गूढार्थ प्रतीतिमूलक अलंकारों में पर्यायोक्ति का प्रयोग उदात्त का साधक है। प्राचीन कवि महासत्व उदात्त नायक के निगूढाहंकार को मार्मिक अभिव्यक्ति देने के लिए पर्यायोक्ति का आश्रय लेते रहे हैं। इसमें विवक्षितार्थ का वाच्यवाचक भाव से भिन्न चमत्कारपूर्ण प्रतिपादक होता है।

प्रसाद :         पवन पी रहा था शब्दों को ।[2]

पवन संचार के अतिरिक्त चतुर्दिक शान्ति थी। इसी सामान्य बात को पवन शब्दों को पी रहा था इस प्रकार कहा गया है।

कुछ विद्वानों ने अलंकारों में 'उदात्त' अलकार की भी चर्चा की है। मम्मट के अनुसार, "किसी भी वस्तु की समृद्धि तथा महान् व्यक्तियों को उस समृद्धि का सहायक चित्रित करना 'उदात्त' अलंकार का लक्षण है। परन्तु इस लक्षण का काव्य के अभिधान प्रकार (अभिव्यक्ति पक्ष) से सम्बन्ध नहीं है अतः उदात्त का अलंकारत्व ही संदिग्ध है।"[3]

## निष्कर्ष

लोंजायनस ने उदात्त के पोषक जिन अलंकारों का वर्णन किया है उन सबका प्रयोग यद्यपि छायावादी काव्य में नहीं उपलब्ध होता है तथापि कुछ अलंकारों का प्रयोग छायावादी कवियों ने अपने काव्य में किया है। इन अलंकारों के अतिरिक्त अन्य अलंकार भी हैं जिनमें उदात्त तत्त्व पाया जाता है जिसका संकेत लोंजायनस ने नहीं किया है।

## बिम्ब-योजना

छायावादी काव्य शैली में बिम्ब का स्थान सर्वप्रमुख है। बिम्ब भारतीय कविता में पश्चिम से आया है। वह इमेज के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी काव्यालोचन में इमेज शब्द का व्यवहार अपने व्यापक अर्थ में किया गया है कि वह समस्त अप्रस्तुत विधान के सौन्दर्य का पर्याय बन गया है। बिम्ब एक ऐसा काव्यालंकार है जिसकी निर्मिति में अनेक भारतीय अलंकारों का अंशयोग

१. पन्त—पल्लव, पृ० १
२. प्रसाद—कामायनी—चिन्ता सर्ग, पृ० १६
३. डॉ० नगेन्द्र—काव्य में उदात्त तत्त्व, पृ० २५-२६

नौका से उठती जल हिलोर,
हिल पड़ते नभ के ओर छोर।
विस्फारित नयनो से निश्चल, कुछ खोज रहे
चल तारक दल
ज्योतित कर नभ का अन्तस्तल।[1]

● ये अश्रु राम के आते ही मन में विचार,
उद्वेल हो उठा शक्ति खेल सागर अपार,
हो श्वसित पवन उन्नचास, पिता पक्ष से तुमुल
एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल,
शत घूर्णावर्त, तरंग-भंग, उठते पहाड़।
जल राशि राशि जल पर चढ़ता खाता पछाड़,
तोड़ता बन्ध-प्रतिबन्ध धरा हो स्फीत वक्ष
दिग्विजय अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष
शत वायु वेग बल, हुआ अतल मे देश भाव
जल राशि विपुल मथ मिला अनिल मे महाराज
वज्राग तेजघन बना पवन को, महाकाश
पहुचा, एकादश रुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास।[2]

● छूटती चिंगारियां, उत्तेजना उद्भ्रान्त;
धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशांत।
वातचक्र समान था कुछ बाधता आवेश,
धैर्य का कुछ भी न मनु के हृदय मे था लेश।[3]

सबल तरंगाघातों से उस
क्रुद्ध सिन्धु के, विचलित-सी
व्यस्त महाकच्छप-सी धरणी,
ऊर्म चूम सी विकलित सी।[4]

१. पंत—रश्मिबंध—पृ० ६८
२. निराला—अनामिका, पृ० १५७
३. प्रसाद—कामायनी, पृ० १००
४. वही, पृ० २३

## वर्ण बिम्ब

हंस देता जब प्रात, सुनहरे
अंचल में बिखरा रोली।
गुलालों से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में पहला दीप।[1]

महादेवी जी द्वारा रचित इन वर्ण बिम्बों मे प्रातः तथा सन्ध्या का अरुणिम सौन्दर्य दृष्टि के समक्ष प्रत्यक्ष हो जाता है। क्रमशः प्रातः और सन्ध्या को चित्रित करने वाले प्रथम दो उद्धरणों मे रोली तथा गुलाल के रंगो का प्रयोग कर महादेवी जी ने अत्यन्त नयनाभिराम तथा मार्मिक वर्ण बिम्बों की योजना की है। रोली तथा गुलाल दोनो ही सम्पन्नता तथा उल्लास के प्रतीक हैं।

पूर्व दिशा का प्रभातकालीन अरुण सौन्दर्य प्रसाद जी की इन पंक्तियों मे दृश्यमान हो गया है।

प्राची के अरुण मुकुर में।[2]

## नाद बिम्ब

पपीहों की वह पीन पुकार,
निर्झरों की भारी झर झर,
झींगुरो की झीनी झंनकार
घनो की गुरु गम्भीर घहर।[3]

गरजो हे मन्द्र, वज्र-स्वर,
थराये भूधर—भूधर,
झरझर झर झर धारा झर
पल्लव पल्लव पर जीवन।[4]

झूम झूम मृदु गरज गरज घन घोर।
राग अमर! अम्बर मे भर निज रोर।
झर-झर-झर निर्झर गिरिसर मे,
घर, मरु, तरु, मर्मर, सागर मे।[5]

१. महादेवी—यामा, पृ० ६
२. आंसू, पृ० ६७
३. पंत—पल्लव, पृ० ६०
४. निराला—गीतिका, पृ० ५६
५. वही—परिमल—बादल राग, पृ० १५६

ध्वनि प्रतीकात्मक बिम्बों की छायावादी काव्य में बहुलता है। छायावादी कवियों ने अधिकांशतः वंशी, वीणा, बीन, मुरली, मृदंग, कोकिल आदि के ध्वनि प्रतीकों का चयन किया है—

गूंजती क्यों प्राण वंशी[1]

सुम कर पल्लव झंकृत सितार,
जगत उर की गत अभिलाषा।[2]

*अति मधुर मृदंग बजाता*
संगीत मनोहर उठता।[3]

ध्वनि बिम्ब निराला में—

क्षिति में—जल में—नभ में—अनिल अनल में
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा चुप-चुप-चुप
है गूंज रहा सब कहीं
और क्या है कुछ नहीं।[4]

घ्राण बिम्ब

आ रही थी मदिर भीनी माधवी की गंध।[5]

आती समीर
*जैसे स्पर्श कर अंग एक अज्ञात किसी का*
सुरभित सुमन्द में हो जैसे अंगराग गंध।[6]

प्रकृति-चित्र

कवि प्रधानतया प्रकृति का कवि रहा। प्रकृति उसकी सहचरी, सहयोगिनी, प्रेयसी, सखी सब कुछ बनी।

संश्लिष्ट चित्र

बिम्ब ग्रहण के लिए इस प्रकार के चित्र आवश्यक हैं। 'निराला जी

१. महादेवी—दीपशिखा, पृ० १२६
२. निराला—परिमल, पृ० ८१
३. प्रसाद—कामायनी, पृ० ३०१
४. निराला—परिमल, पृ० १२६
५. प्रसाद—कामायनी, पृ० ६६
६. निराला—अनामिका, पृ० १७२

ने जो चित्र दिए हैं वे अधिकतर संश्लिष्ट, सामंजस्य और सौष्ठव से पूर्ण तथा सन्तुलित हैं। उनमें क्रमबद्धता तथा अखण्डता भी दिखलाई पड़ती है।'[1] इस प्रकार के चित्र भी दो प्रकार के दिखाई देते हैं। एक में प्रकृति का यथावत् चित्रण है द्वितीय में प्रकृति के मानवीकृत चित्रों की योजना है। दोनों प्रकार के चित्रों मे निराला की स्थिति मात्र दर्शक की नहीं है अपितु वे उसी में लीन होकर रहते हैं—

> बहुत दिनों बाद खुला आसमान,
> निकली है धूप हुआ खुश जहान।
> दिखी दिशाएं मील के पेड़,
> चरने को चले ढोर गाय भैंस भेड़।[2]

पूरे गाव का कैनवास है। ग्राम के समस्त अंगो का चित्र है।

## मानव-चित्र

राम का चित्र—

> रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत चरण।[3]

उपर्युक्त चित्र मे स्पष्टता भी है मासलता भी। राम के शारीरिक अवयवों के चित्रण के समय कवि ने प्रकृति के किसी अंग से उसकी उपमा नहीं दी है। एक अन्य मासल चित्र—

> वह आता दो टूक कलेजे के करता
> पछताता पथ पर आता।[4]

## मानव बिम्ब

छायावादी काव्य के बिम्ब अधिकांशतः इसी कोटि के हैं। स्थूल ज्ञानेन्द्रियों की अपेक्षा उनका सवेदन मूल रूप से सूक्ष्मेन्द्रिय मन के प्रति है। मानव की अमूर्त सौन्दर्य चेतना को मूर्त करने के लिए प्रसाद ने अनेक समृद्ध एवं सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत किए हैं जो सहृदय के मन मे सौन्दर्य भाव की मानस प्रतिमा अंकित कर देते हैं—

१. रघुनाथ सिंह—छायावाद युग, पृ० २८५
२. निराला—अनामिका, पृ० १३८
३. वही, पृ० १३८
४. निराला—परिमल, पृ० १२५

नयनों की नीलम की घाटी जिस रस घन से छा जाती हो,
वह कौंध कि जिससे अतर की शीतलता ठंडक पाती हो,
हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का गोधूली की सी ममता हो
जागरण प्रातः सा हसता हो जिसमे मध्याह्न निखरता हो।[1]

प्रत्येक पक्ति के हलके संकेत उभर कर सम्पूर्ण बिम्ब को उभार देत हैं।

## निष्कर्ष

१. छायावाद के बिम्ब, स्थूल इन्द्रिय सवेदन जगाने के स्थान पर सहृदय के मानस मे वर्ण्य के प्रभाव की समग्र प्रतिच्छवि अंकित करते हैं।

२. छायावादी कवियो की सफलता का रहस्य संश्लिष्ट बिम्ब रचना मे निहित है।

३. महादेवी मे बिम्ब चित्रात्मक गुण विशिष्ट एवं चाक्षुप अधिक है। महादेवी के वर्ण हलके और स्निग्ध है पन्त के मुखर एव भास्वर।

निराला के विराट् बिम्ब वास्तव मे दिगन्त व्यापी हैं। विराट् एवं उदात्त बिम्बों की सफल सृष्टि गौरव के अधिकारी निराला ही हैं। काव्य मे विराट् चित्रों के अंकन के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए उन्होने कहा है कि "काव्य मे साहित्य के हृदय को दिगत व्याप्त करने के लिए विराट् रूपों की प्रतिष्ठा करना अत्यन्त आवश्यक है। अवश्य छोटे रूपों के प्रति यहा कोई द्वेप नही दिखलाया जा रहा। रूप की सार्थक लघु विराट् कल्पनाए संसार के सुन्दरतम रंगो से किस तरह अंकित हो उसी तरह रूप तथा भावनाओ का अरूप मे, सार्थक अवसान भी आवश्यक है। निराला के विराट् बिम्ब, वास्तव मे दिगन्त व्यापी हैं। वे दिगन्त व्यापी बिम्ब छायावाद की उदात्त एवं विराट् कल्पना के सुन्दर निदर्शन हैं।[2]

## प्रतीक-योजना

आग्ल आलोचक आगस्टिन वारेन तथा रेने वेलक का कथन है "प्रतीक एक ऐसी संज्ञा है जिसका प्रयोग तर्कशास्त्र, गणित चिह्न विज्ञान, ज्ञान सिद्धान्त, धर्मशास्त्र, ललित कला और कविता सभी मे होता है।"[3]

१. प्रसाद—कामायनी, पृ० ८२
२. *निराला—प्रबन्ध पद्य (काव्य में रूप और अरूप), पृ० १५४-१५५*
३. Warren Austin and Wellek Rene—Theory of Literature p. 193 "It appears as a term in logic, in mathematics, in semantics and semiotics and epistemology. It has also had a long history in the worlds of theology of Liturgy, of the fine arts and of poetry."

"कविता में प्रयुक्त प्रतीक को अभिव्यक्ति का साधन मात्र नही समझना चाहिए वरन् उसका मूल्य सौन्दर्यगत तथा आन्तरिक भी होता है।"[१]

साहित्य के पारम्परित और परिचित प्रतीकों को समझना सरल है। कमल, चन्द्र आदि प्रतीक ऐसे ही हैं। "परन्तु जो कवि अपने व्यक्तिगत भावोच्छ्वास का वर्णन करता है उसे अपने निजी प्रतीक ढूंढ़ने पड़ते हैं जिनको ढूंढ़ना दूसरो के लिए कठिन हो सकता है।"[२]

छायावादी काव्य मे इन प्रतीको का पर्याप्त प्रयोग मिलता है।

छायावादी कवि स्वभावत: प्रकृति प्रेमी है। इस तथ्य की पुष्टि के लिए उनकी कविता इसका जीता-जागता प्रमाण है। ये कवि प्रकृति के वैभव में सौन्दर्य खोजते है। मानो प्रकृति इनके लिए सौन्दर्य धात्री हो। इस प्रकार से प्रकृति का प्रयोग संकेतात्मक तथा प्रतीकात्मक रूप मे करते हैं—

प्राची के अरुण मुकुर में
सुन्दर प्रतिविम्ब तुम्हारा
उस अलस ऊषा में देखूं
अपनी आंखों का तारा ॥[३]

यहा 'अरुण मुकुर' सूर्य के तथा 'आंखो का तारा' प्रिय के लिए प्रयुक्त हुए हैं। प्रिय दर्शन की लालसा को कवि ने इस प्रतीक व्यंजना के सहारे व्यक्त किया है। रहस्यात्मक महादेवी के काव्य मे भी प्रतीक प्राप्त होते हैं। महादेवी अपने बिछुड़े हुए प्रिय के लिए लिखती हैं—

जो गया छवि रूप का घन,
उड गया घन सार-कण बन ।[४]

'छवि रूप का घन' तथा 'घनसार कण' में जो प्रतीकात्मकता है उससे प्रिय का कोई निश्चित रूप सामने नही आता।

१. Warren Austin and Wellek Rene—Theory of Literature p. 330 "That is to say, the plurisign, the poetic symbol, is not merely employed but enjoyed, its value is not entirely instrumental but largely aesthetic, Intrinsic."
२. Bowra C. M. The Heritage of S-
३. प्रसाद—आंसू, पृ० ६७
४. महादेवी—दीपशिखा, गीत सं० १२

## अप्रस्तुतात्मक प्रतीक

छायावादी कवियों ने इस प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया है। जैसे— परमात्मा अपनी अभिव्यक्ति के लिए आत्मा को माध्यम बनाता है उसी प्रकार प्रस्तुत भी अपनी अभिव्यंजना के लिए प्रतीक की स्वतन्त्र सत्ता को विशिष्टताओं को आवृत हो जाता है। ये प्रतीक अपनी स्वतन्त्र अर्थवत्ता को छोड़कर प्रकरण या प्रसंग से अर्थवत्ता ग्रहण करने लगते हैं—

> झंझा झकोर, गर्जन था,
> बिजली थी, नीरद माला,
> पाकर इस शून्य हृदय को
> सबने आ डेरा डाला? ।[1]

झंझा, झकोर, गर्जन, बिजली और नीरद माला हृदय में उठने वाली विह्वलता की सासों, सहसा जगने वाली व्यथाओं और उदासी आदि के लिए आये हैं। ये धर्म इतने व्यापक नहीं हैं कि यहां प्रस्तुत अप्रस्तुत की पारस्परिकता से आगे बढ़कर किसी वृहत्तर सार्वभौमता को स्पर्श करें—

> "विष प्याली जो पी ली थी,
> वह मदिरा बनी नयन में ।
> सौन्दर्य पलक प्याले का
> अब प्रेम बना जीवन में ॥"[2]

विष प्याली और मदिरा प्रेम की कड़वी घूंट और प्रेमोन्माद के लिए आए हैं। मदिरा अप्रस्तुत के साथ-साथ मतवालेपन के धर्म वाला प्रतीक भी है।

निराला ने अमूर्त अन्तर्द्वन्द्व को सघन एवं सुदृढ़ प्रतीकों द्वारा मूर्तिमान किया गया है—

> है अमा निशा, उगलता गगन घनांधकार,
> खो रहा दिशा का ज्ञान स्तब्ध है पवन चार,
> अप्रतिहत गरज रहा पीछे, अम्बुधि, विशाल ।
> भूधर ज्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल ॥[3]

निराला के प्रतीकों की विशिष्टता यही है कि कवि सदैव अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति पर बल देता है। चित्रात्मकता प्रतीकों का सहज गुण है

१. प्रसाद—आंसू, पृ० १५
२. वही, पृ० ३२
३. निराला—अनामिका, पृ० १४

किन्तु चित्रण की प्रधानता न देकर भावनाओं की सबल अभिव्यक्ति पर ही निराला जी का ध्यान केन्द्रित रहा है। महादेवी एवं पंत की संध्या सुन्दरी यदि चित्रात्मकता में अद्वितीय है तो निराला की 'संध्या सुन्दरी' भावाभिव्यक्ति है। निराला जी के सम्बोधन गीत अधिक उदात्त एवं प्रेरणात्मक हैं।

यमुना के प्रति, तरंगों के प्रति, जलद के प्रति आदि अनेक सम्बोधन गीत प्रतीक अर्थ में अद्वितीय है। 'यमुना के प्रति' अतीत गौरव का प्रतीक है। रीतिकालीन शृंगारिकता से मुक्त यमुना का उदात्त स्वरूप देखने को मिलता है।

प्रतीकों की सुन्दर योजना हमें निराला की शक्ति पूजा एवं तुलसीदास में देखने को मिलती है। भावनाओं की तीव्रता को व्यक्त करने की जो सक्षमता निराला के प्रतीक में है वही इनकी सफलता का साधन है।

## मूर्त के लिए अमूर्त-उपमानों के लाक्षणिक प्रयोग

करुण भौंहों में था आकाश
हास में शैशव का संसार
+ + +
ऊषा का था उर में आवास
मुकुल का मुख में मृदुल विकास
चांदनी का स्वभाव में भास
विचारों में बच्चों की सांस ॥[1]

यहां आकाश, ऊषा, मुकुल, चांदनी आदि लक्षणामूलक प्रतीक हैं जो क्रमशः उच्चता, उल्लास, रमणीयता, स्निग्धता आदि के स्थानापन्न कहे जा सकते हैं। इसीलिए यहां ऊषा और आकाश को छोड़कर अन्य सब लाक्षणिक प्रतीकों में धर्म के स्थान पर धर्मों का उल्लेख कर दिया गया है।

उदात्त चित्रण में बिम्ब विधान की अपेक्षा प्रतीक योजना अधिक महत्वपूर्ण है। बिम्ब का लक्ष्य चित्रात्मकता है उसमें अंकन-स्पष्टता अनिवार्य है प्रतीक में अंकन-स्पष्टता अनिवार्य नहीं। प्रत्येक भाषा में कुछ प्रतीक ऐसे मिलते हैं जो पौराणिक परम्परा, सांस्कृतिक चेतना एवं इतिहास बोध आदि से सम्बद्ध होने के कारण लोक चेतना का सजीव अंग बन चुके हैं। उनका प्रयोग सहज ही उदात्त का पोषक हो जाता है। अश्वत्थ, वटवृक्ष, हंस, गरुड, सूर्य एवं अग्नि आदि ऐसे ही प्रतीक हैं। देवाधिष्ठित अन्य प्रतीक भी उदात्त कोटि के हैं।

१. पंत—पल्लव, पृष्ठ २०

## उपसंहार

उदात्त अंग्रेजी शब्द (Sublime) का हिन्दी रूपान्तरण है। इसके सर्वप्रथम विचारक लांजायनस ने 'पेरिइप्सस' ग्रन्थ काव्य मे उदात्त तत्त्व के लिए लिखा था। उदात्त के स्वरूप पर विभिन्न पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने मतों का प्रतिपादन किया है। लांजायनस के अनुसार उदात्त से अभिप्राय विराट् दृश्यो, व्यक्तियो एवं वस्तुओ से है जिनके द्वारा हमारी आत्मा हर्ष और उल्लास से परिपूर्ण हो ऊपर उठ जाती है। जिसका प्रभाव हमारी स्मृति पर इतना गहरा पड़ता है कि वह मिटाये नही मिटता। पाश्चात्य विद्वान् बायलो के अनुसार उदात्त केवल एक पंक्ति मे भी हो सकता है। जानसन उदात्त और सुन्दर में भेद मानते हैं। उनके अनुसार सुन्दर कुछ-कुछ आलंकारिक होने से उदात्त के निकट था। कांट ने जानसन के समान ही उदात्त, भव्य और सुन्दर मे भेद स्पष्ट करने का प्रयास किया है। वर्ड्सवर्थ और कालरिज के अनुसार उदात्त का सम्बन्ध विराट् दृश्यो और व्यक्तियो से होता है। आर्नेल्ड उदात्त शैली पर जोर देते हैं। इस प्रकार से हम देखते हैं कि पाश्चात्य विद्वानो ने उदात का अर्थ महान् घटनाओ, दृश्यो या व्यक्तियो से लिया है जिनके वर्णन के लिए भाषा-शैली भी उदात्त होनी चाहिए।

उदात्त से अभिप्राय वस्तु के आकार की विशालता नही अपितु उसके मूल में छिपी हुई उस महती शक्ति से है जिसके कारण वह उदात्त है।

लांजायनस के अनुसार उदात्त विषयो के वर्णन के लिए शैली भी उदात्त होनी चाहिए। उदात्त शैली के अन्तर्गत उत्कृष्ट भाषा, अलंकार, बिम्ब एवं प्रतीक आदि का समावेश होना चाहिए।

भारतीय विद्वानो की औदात्य विषयक अवधारणा मे सबसे अधिक नायक पर बल दिया है। पाश्चात्य विद्वानों ने पृथक् रूप में उदात्त नायक की कोई कल्पना नही की है। किन्तु भारतीय विद्वानों ने उदात्त के अन्तर्गत उदात्त नायक पर ही सबसे अधिक बल दिया है। जो व्यक्ति किसी प्रकार के शौर्य, त्याग, दया आदि से अन्य व्यक्तियो की अपेक्षा आगे बढ़ा हुआ हो अथवा सर्वातिशायी हो वह उदात्त कहलाता है।

छायावादी कवियों की औदात्त विषयक अवधारणा में विगत युगों की एकदेशीय उदात्तता का अतिक्रमण कर विश्वमुखी औदात्य पर बल दिया गया है। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी इन चारों कवियों ने विराट् रूपों का वर्णन अपने काव्य में किया है। इनमें से प्रसाद और पन्त को तो प्रकृति से ही काव्य-सृजन की प्रेरणा प्राप्त हुई थी। उदात्त भाषा, सौन्दर्य भावना, अलंकार, बिम्ब आदि सभी का पर्याप्त समावेश इनके काव्य में प्राप्त होता है। निश्चय ही वह सभी गुण काव्यशास्त्र में उदात्त की कोटि में आते हैं।

छायावादी कवियों के काव्य में महान् धारणाओं की क्षमता का प्रतिफलन विभिन्न रूपों में हुआ है। १. आत्मप्रसार, २. विराटता का बोध, ३. राष्ट्रीयता, ४. रहस्योन्मुखता।

आत्मप्रसार की भावना ने पुरानी रूढ़ियों से टक्कर ली और जीवन के सभी क्षेत्रों में संकीर्णता का विरोध किया। छायावादी कवि इस धरती से सन्तुष्ट नहीं था। वह एक साथ धरती और आकाश को बांध लेना चाहता था।

अतीत प्रेमी प्रसाद में आत्मप्रसार की यह भावना अधिक दिखाई देती है। मानव जीवन को प्रसाद ने एक विशाल एवं अर्थपूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखा है। अतः इनके कथानकों का आधार प्रागैतिहासिक युग से लेकर आधुनिक यन्त्रयुग तक विस्तृत है। एक ओर इन्होंने इतिहासकार की भांति अतीत की कुहराच्छन्न सामग्री को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है। दूसरी ओर प्रेम और कर्त्तव्य, क्षमा और प्रतिशोध के माध्यम से मानव को व्याख्यायित करने का और भारतीय संस्कृति के उदात्त पक्ष को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।

विराटता के बोध में निराला ने विराट् रूपों की प्रतिष्ठा करने पर जोर दिया है। छायावादी कवियों में सबसे अधिक निराला के काव्य में विराट् दृश्यों का वर्णन किया गया है। निराला की 'राम की शक्ति पूजा' तथा 'तुलसीदास' और प्रसाद की 'कामायनी' में विराटता के दर्शन होते हैं। छायावादी कवियों ने व्यक्ति और प्रकृति प्रेम के पश्चात् देश-प्रेम पर भी बल दिया है। जिसमें उसके हृदय में राष्ट्रीयता की भावना जागृत हुई। पन्त और प्रसाद में यह भावना अधिक दिखाई देती है।

छायावादी कवियों ने रहस्योन्मुखता के माध्यम से अपने विराट् भावों की अभिव्यक्ति की है। इसके अतिरिक्त महान् धारणाओं की क्षमता को प्रबन्ध और मुक्तक रचनाओं में विषय के चयन और उसके निर्वाह के विभिन्न रूपों—१. वस्तु चयन, २. व्यापार चयन, ३. चरित्रांकन, ४. भाव-योजना में व्यक्त किया है। उदात्त का दूसरा तत्त्व आवेग है जिसका प्रमाण भी छायावादी कवियों के काव्य में पर्याप्त मिलता है। आवेग से अभिप्राय ऐसे आवेग

से है जिससे हमारी आत्मा ऊपर उठकर गर्व से उच्चाकाश में विचरण करने लगती है। हर्ष और उल्लास से परिपूर्ण हो उठती है। इसी प्रकार के आवेग उदात्त की सृष्टि करते हैं। छायावादी कवियों ने प्रकृति के उदात्त दृश्यों एवं प्रेम के उदात्त रूपों का वर्णन अपने काव्य मे किया है। प्रेम की यह रसमयी और आलोकवान भावना आलम्बन में अनन्त सौन्दर्य तथा पवित्रता समाहित कर देती है। पवित्रता भारतीय प्रेम व सौन्दर्य का सर्वोच्च गुण है। पन्त की प्रेम सम्बन्धी धारणा बहुत व्यापक है। प्रसाद ने भी कामायनी मे इसी प्रकार की श्रद्धा और मनु के मिलन की भावना का सुन्दर चित्रण किया है। महादेवी जी भी इसी प्रकार के शाश्वत प्रणय की खोज मे हैं किन्तु ऐसा सुख अलौकिक प्रियतम से ही प्राप्त हो सकता है।

इस प्रकार से छायावादी कवियों ने अपने काव्य में महान् धारणाओं की क्षमता एव प्रेरणा प्रसूत मध्य आवेगों का पर्याप्त परिचय दिया है जो कि उदात्त के अन्तर्गत आते हैं।

छायावादी काव्य मे अनजाने ही मानो उदात्त भाषा-शैली के निर्वाह की दृष्टि से लाजायनस की इस उक्ति को सदैव ध्यान मे रखा गया है "उदात्त की अभिव्यक्ति का माध्यम उत्कृष्ट या गरिमामयी भाषा ही हो सकती है।" उदात्त भाषा-शैली विषयानुरूप होनी चाहिए। छायावादी कवियों ने अपने काव्य मे विषयानुरूप भाषा का प्रयोग किया है। यह सब कविता को औदात्य प्रदान करते हैं।

पत ने अनुभूति और विचार के क्षेत्र मे जिस व्यापकता का परिचय दिया है उसी के अनुपात मे उनकी भाषा-शैली भी समुन्नत है। पंत जी की कविता मे हर्ष, उल्लास और वेदना आदि मनोभावों के सुन्दर चित्र मिलते हैं। वेदना मे भाषा स्वभावत: सरल और गतिशील रही, चिन्तन मे गम्भीर और दार्शनिक, स्थिर। महादेवी के काव्य मे भी भाषा की अभिव्यक्ति प्रसंगानुरूप हुई है। छायावादी कवियों ने गुणों के अनुरूप, दोषों से रहित भाषा का प्रयोग किया है। इनका शब्द भण्डार भी अत्यन्त व्यापक है। शब्दों की अन्तरात्मा का ज्ञान भी इनको पर्याप्त है। सौन्दर्य के अनेक चित्र भी प्रस्तुत किये हैं। आवश्यकतानुसार उदात्त अलंकारों का भी प्रयोग किया गया है। बिम्ब, प्रतीक आदि का भी प्रयोग इनकी भाषा मे मिलता है। निश्चय ही छायावादी कवियों की भाषा उदात्त भाषा-शैली है।

औदात्य विषयक, दृष्टिकोण, भाषा-शैली सभी दृष्टियों से छायावादी काव्य का प्रमुख और व्यावर्तक धर्म रहा है। सम्पूर्ण आधुनिक साहित्य मे छायावादी काव्य को आज जो गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है उसके अनेक कारणों में से छायावादी कविता का यह उदात्त स्वर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारण है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

### हिन्दी


इन्द्रनाथ मदान—महादेवी, (१९६५)

ओंकार शरद—निराला स्मृति ग्रंथ, (प्रथम १९६६)

करुण हरीश—ग्रीक साहित्य शास्त्र, (१९६४)

गंगाप्रसाद पाण्डेय—महाप्राण निराला, (द्वितीय १९६८)
महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, (द्वितीय १९४४)

गणपतिचन्द्र गुप्त—साहित्य विज्ञान, (१९३३)

जगदीश पाण्डेय—उदात्त सिद्धान्त और शिल्पन, (प्रथम १९६४)

धनंजय वर्मा—निराला : काव्य और व्यक्तित्व, (द्वितीय १९६५)

नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य, (सं० २००७)
निराला
हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी

(डॉ०) नगेन्द्र—काव्य मे उदात्त तत्व, (प्रथम १९५८)
आस्था के चरण, (प्रथम १९६८)
काव्य-बिम्ब, (प्रथम १९६७)
सुमित्रानन्दन पन्त, (नवम् सं० २०१६)
देव और उनकी कविता (द्वितीय १९६२)

नामवर सिंह—आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ
छायावाद, (प्रथम १९५५)
कविता के नए प्रतिमान, (१९६१)

निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी—अपरा, (द्वितीय सं० २००१)
अनामिका, (द्वितीय सं० २००५)
गीतिका, (तृतीय सं० २००५)
तुलसीदास (अष्टम् सं० २०२३)

परिमल (प्रथम १९६६),
प्रबन्ध प्रतिमा, (सं० १९९७)
प्रबन्ध पद्म (प्रथम सं० १९९६)
रवीन्द्र कविताकानन, (१९५४)

पन्त, सुमित्रानन्दन—गुंजन (सातवा स० २०१०)
ग्राम्या (२००८)
छायावाद : (पुनर्मूल्यांकन प्रथम १९६५)
पल्लव (आठवा १९६७)
रश्मिबन्ध (दशम् १९६७)
पल्लविनी (तृतीय २००४)

प्रसाद, जयशंकर—आंसू (सत्रहवा स० २०२५)
कामायनी (द्वादश सं० २०२१)
काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध (पंचम् स० २०१५)
झरना (नवम् सं० २०२१),
लहर (अष्टम् स० २०२४),

महादेवी वर्मा—दीपशिखा, (छठा सं० २०१९)
यामा (नीहार, रश्मि, सान्ध्यगीत) (सं० २०१८),
साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध (द्वितीय १९६६)

यश गुलाटी—हिन्दी के श्रेष्ठ काव्यों का मूल्यांकन, (प्रथम १९६९)

रामचन्द्र शुक्ल—रस मीमांसा, (तृतीय सं० २०१७),

(डॉ०) रामविलास शर्मा—निराला, (तृतीय १९६२)

*(डॉ०) रामदत्त भारद्वाज—काव्यशास्त्र की रूपरेखा, (१९६३)*

रामदहिन मिश्र—काव्य दर्पण, (चतुर्थ १९६०)

रामधारीसिंह दिनकर—काव्य की भूमिका, (प्रथम, १९५८)

रामअवध द्विवेदी—साहित्य सिद्धान्त, रवीन्द्रनाथ टैगोर साहित्य (अनुवादक वंशीधर विद्यालंकार) (१९२९)

विश्वम्भर मानव—महादेवी की रहस्यानुभूति, (१९४४)

शम्भुनाथ सिंह—छायावाद-युग, (प्रथम १९५२)

शिवबालक राय—काव्य में सौन्दर्य और उदात्त तत्त्व, (प्रथम, १९६८)

शचीरानी गुर्टू—महादेवी, (१९६३)

शिवप्रसाद क्षोत्रिय 'दिनकर'—अभेददर्शी निराला, (प्रथम, १९६६)

हजारीप्रसाद द्विवेदी—विचार और वितर्क, (सं० २००२)
विचार प्रवाह, (१९३९)
हिन्दी साहित्य की भूमिका, (१९४८)

संस्कृत

ऋग्वेद संहिता
तैत्तरीय प्रातिशाख्य

भरत—नाट्य शास्त्र, (१९५४)
धनंजय—भारतीय नाट्य शास्त्र की परम्परा और दशरूपक, (१९२७)
अनुवादक आचार्य विश्वेश्वर—हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम्
विश्वनाथ—साहित्य दर्पण, (पंचम, १९३१)

पत्र-पत्रिकाएँ : कोश

अवन्तिका : जुलाई, (१९६४)
धर्मयुग : १६ फरवरी १९६५
हिन्दी साहित्य कोश, भाग १ (द्वितीय संस्करण)

ENGLISH

Bowra, C. M., *The Heritage of Symbolism*, 1951.
Bradley, A. C., *Oxford Lectures on Poetry*, 1955.
Bosanquet, Bernard, *A History of Aesthetics*, 1949.
Burk, Edmund, *The Harvard Classics Vol. 24.*
Crane, R.S , *Critics and Criticism*, 1952.
Daiches, David, *Critical Approaches to Literature*, 1961.
Flaccus, L. W., *The Spirit and Sustance of Art.*
George, Santayand, *The Sense of Beauty*, 1955.
Kedney, I. S., *Heagal's Aesthetics.*
Kruzer. James R., *Elements of Poetry.*
Lewis, C. Day, *Poetic Image*, 1958.
Lieder, Paul Robert, Robert Withington, *The Art of Literary Criticism* 1941.

Rosser, G. C., *English Literary Appriciation.*

Roberts, W. Rhys, *Longinus on the Sublime*, 1935.

Shastri Surendra Nath, *The Laws of Sanskrit Drama Vol. I*, 1961.

Tagore, Ravinder Nath, *Collected Poems & Plays of Ravinder Nath Tagore*, 1961.

Wordsworth William and Coleridge S. T., *Lyrical Ballads*, 1920.

Warren Austin and Wellek, Rene, *Theory of Literature*, 1955.

Wimsatt, William and Brooks Cleanth, *Literary Critcism : A Short History*, 1964.

Wordsworth, *English Critical Essays XIX Century* (*World's Classics*), 1864.